कुरुक्षेत्र

जनवरी 1994

तीन रुपये

ग्रामीण विकास और साक्षरता

नए वर्ष की बेला में

✍ डॉ. सेवा नन्दवाल

नए वर्ष की बेला में हम ये शपथ उठाएं
कर्मठ बने और मेहनत से जी न चुराएं

श्रम ही से सब हासिल होता
श्रम करने पर कोई न रोता
बैठे बैठे सब जो पाना चाहे
उसका जीवन सुखी न होता

नए वर्ष की बेला में हम ये शपथ उठाएं
सदा रहे उद्योगरत आलस न लाएं
श्रम की रोटी का स्वाद नया
नए वर्ष की बेला में हम ये शपथ उठाएं
छोड़ के सुस्ती हम श्रम का सम्मान बढ़ाएं

केंद्रीय विद्यालय
तोपखाना केंद्र
नासिल रोड कैम्प - 422102

सूर्य उगा है नए वर्ष का

✍ जगदीश चन्द्र शर्मा

सूर्य उगा है नए वर्ष का
पंछी उड़कर आसमान में
कंठ कंठ से मेलजोल के
स्वर की झड़ी लगाते हैं।

मंद हवा के सरवर में भी
उठी हिलोरे नए हर्ष की
कमल खिले अभिलाषाओं के
पर्यावरण सजाते हैं।

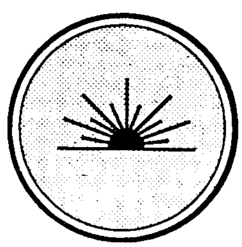

नए कार्य करने की क्षमता
लगी उमड़ने दिग्मंडल में
अपनी सभी समस्याओं को
सब मिल कर सुलझाते हैं।

चहल पहल छाई घर घर में,
पुलक उठे कर्त्तव्य समूचे,
बच्चे अपनी मुस्कानों से
जीवन सरस बनाते हैं।

प्राचार्य,
पो. गिलूंड - 313207
उदयपुर : राजस्थान

कुरुक्षेत्र

ग्रामीण विकास मंत्रालय का प्रमुख मासिक

'कुरुक्षेत्र' के लिए मौलिक लेख, कहानी, एकांकी, कविता, संस्मरण, हास्य-व्यंग्य चित्र आदि भेजिए। लघु कथाओं का भी स्वागत है। अस्वीकृत रचनाओं की वापसी के लिए टिकट लगा व पता लिखा लिफाफा साथ आना आवश्यक है। 'कुरुक्षेत्र' की एजेन्सी लेने, ग्राहक बनने व अंक न मिलने की शिकायत, व्यापार व्यवस्थापक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001 से कीजिए।

वर्ष 39 अंक 3 पौष-माघ शक 1915 जनवरी 1994

संपादक	:	राम बोध मिश्र
सह संपादक	:	बलदेव सिंह मदान
उप संपादक	:	ललिता जोशी

उप निदेशक (उत्पादन)	:	एस.एम. चहल
विज्ञापन प्रबंधक	:	बैजनाथ राजभर
व्यापार व्यवस्थापक	:	जॉन नाग
सहायक व्यापार व्यवस्थापक	:	एडवर्ड बैक
आवरण सज्जा	:	आर.के. टंडन

एक प्रति : 3.00 रु० वार्षिक चंदा : 30 रु०

इस अंक में

ग्रामीण विकास और साक्षरता 3
डा. कृष्ण कुमार सिंह

ग्रामीण विकास और महिला साक्षरता 6
सुभाष चन्द्र सत्य

ग्रामीण शिक्षा : समस्याएं एवं समाधान 9
डा. बिन्दु भाटिया एवं डा. कृष्णा शर्मा

कसक (कहानी) 11
सुधीर ओखदे

देश का पहला संपूर्ण साक्षर जनजाति जिला 13
अशोक कुमार यादव

भारत के विकास में महिलाओं की भूमिका 16
(प्रधान मंत्री का भाषण)

दूरस्थ शिक्षा : सार्थकता का सवाल 19
सत्यभान यादव

गहरी नींद अच्छे स्वास्थ्य के लिए आवश्यक 21
अभय कुमार जैन

ग्रामीण शिक्षा व्यवस्था में सुधार आवश्यक 23
डा. एम. एम. शाह

युवा पीढ़ी की गंभीर समस्या–बेरोजगारी 24
राजीव रंजन वर्मा

बढ़ते हुए खर्च को घटाना है 27
ममता

कीट बनेंगे कीटनाशक 29
विनोद कुमार

ग्रामीण महिलाओं की स्वास्थ्य दशाएं 33
डा. ए. एल. श्रीवास्तव

ग्रामीण विकास में औद्योगिक नगरों का योगदान : भिलाई, एक अध्ययन 35
डा. अजय श्रीवास्तव एवं डा. रमेश चन्द सिंह

हिमाचल में सामाजिक वानिकी–एक आर्थिक पहलू 42
सेवा सिंह सागवाल

प्रकाशित लेखों में अभिव्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं तथा **यह** आवश्यक नहीं कि सरकारी दृष्टिकोण भी वही हो।

सम्पादकीय पत्र-व्यवहार सम्पादक, कुरुक्षेत्र (हिन्दी), ग्रामीण विकास मंत्रालय, 467, कृषि भवन, नई दिल्ली के पते पर करें।

पाठकों के विचार

बाल श्रमिक और उनकी समस्याएं

कुरुक्षेत्र, सितम्बर 93 में प्रकाशित बाल श्रमिकों के बारे में जानकारी बहुत ही सारगर्भित और रोचक लगी। इसको पढ़ने से रोंगटे खड़े हो गये। इससे हमारे देश के आंतरिक खोखलेपन का कच्चा चिट्ठा सामने आता है। जो देश अपने आप को संसार का सबसे बड़ा लोकतंत्र होने का दावा करता है, अपने को विकासशील देशों के अगुआ कहने में गर्व महसूस करता है और उसी देश में विश्व के सबसे अधिक बाल मजदूर ....। आज हम इन नन्ही मुन्नी जानों के साथ खेलकर उनके जीवन और बालपन से खिलवाड़ करके अपने आप को गौरवान्वित महसूस करते हैं। ऐसे विकास का भला क्या लाभ? जिन बच्चों को आज खेलना-कूदना था, जिन्हें आज पढ़ना था और जिनके कंधों पर देश का भविष्य टिका हुआ है उनको अपने-महज निहित-स्वार्थों के लिए, थोड़े से मुनाफे के लिए, खतरनाक जगहों पर लगाना यह कहां का न्याय है?

सरकार ने समय-समय पर अनेक कानून बनाये लेकिन वे आज मात्र कागजों पर ही शोभित हैं। उनका उचित ढंग से क्रियान्वयन नहीं करवाया गया। आजादी के बाद आज 45 वर्षों में बाल श्रमिकों की संख्या बढ़ी ही है, कम नहीं हुई। सरकार को चाहिए कि साहसिक कदम उठा कर ऐसे लोगों के खिलाफ सख्त कार्यवाही करे और जो भी दोषी पाया जाये, उसे कड़ी से कड़ी सजा दी जाये। लेकिन यह काम इतना आसान नहीं होगा। हमें निहित स्वार्थों को भूल दृढ़ संकल्प से काम करना होगा। इसमें न केवल सरकार को बल्कि समाज के हर तबके को कदम से कदम मिलाकर चलना होगा तभी हम इन बालकों के साथ न्याय कर सकेंगे। इसके लिए अमरीका के सेनेटर हरकिंस ने सेनेट में इस आशय का विधेयक लाकर एक सार्थक और स्वागत योग्य कार्य किया है।

नरेश जैन
मु. पो. बांदरी
जिला : सागर (म० प्र०)
पिन - 470442

देश में जनजातीय लोगों की स्थिति

भारत के जनजातीय विकास की गति अत्यंत धीमी है हालांकि यह अभिन्न रूप से ग्रामीण विकास से जुड़ा हुआ है। ग्रामीण विकास पर नीति निर्धारण करते समय जनजातीय समूहों की आकांक्षाओं पर विशेष बल देने की जरूरत है। ये समूह अत्यन्त पिछड़े हुए हैं तथा इनकी आर्थिक-सामाजिक स्थिति अनुसूचित जातियों से भी बदतर है।

अनुसूचित जनजातियों की प्रमुख समस्या है खेती योग्य भूमि का उनके हाथ से निकलते जाना। भूमिहीन जनजातियों की समस्या बढ़ती ही जा रही है। इसके प्रमुख कारण हैं गरीबी, साहूकारों के छल प्रपंच, भूमि संबंधी कानून की खामियां तथा सरकार द्वारा अधिग्रहण।

जनजातीय समूहों का आर्थिक आधार बहुत हद तक वनों के ईद-गिर्द घूमता है। पर वनों से एकत्रित विभिन्न वस्तुओं पर उन्हें उचित मूल्य नहीं मिल पाता। इसमें दलालों का जाल उनका पूरा शोषण करता है।

शिक्षा के क्षेत्र में भी उनमें अत्यंत पिछड़ापन है। शिक्षा को जनजातीय आकांक्षाओं के अनुरूप ढालने तथा इसे रोजगारोन्मुखी बनाने की अत्यंत आवश्यकता है। शिक्षा के बल पर ही हमारे जनजातीय समूह जीवन की कठिनाइयों का सफलतापूर्वक सामना कर पायेंगे।

इन समस्याओं के कारण ही जनजातीय समूहों में असंतोष बढ़ता ही जा रहा है और वे उग्रवादी विचारधाराओं की तरफ आकर्षित होते जा रहे हैं। अगर हम इन भोले-भाले मासूम चेहरों पर हंसी देखना चाहते हैं तो हमें इनके साथ मिलकर विकास की प्रक्रिया में सहयोग करना चाहिये।

अमिताभ रंजन शुक्ल
बी - 14 विजय नगर,
दिल्ली - 110009

ग्रामीण विकास और साक्षरता

✍ डा० कृष्ण कुमार सिंह

भारत गांवों का देश है। गांव ही हमारी अर्थव्यवस्था की मेरूदंड हैं। दुर्भाग्यवश बड़ी संख्या में ग्रामीण ही निर्धन, गरीब, बेरोजगार, शोषित एवं उपेक्षित रहे हैं। इस यथार्थ से मुंह नहीं मोड़ा जा सकता कि 21वीं शताब्दी के प्रवेश द्वार पर भी बड़े पैमाने पर ग्रामवासी (विशेषकर महिला तथा हरिजन) निरक्षर हैं। आज निरक्षरता के अभिशाप से ग्रसित ग्रामीण गरीब अज्ञान रूपी अंधकार में भटक रहे हैं। वे सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक शोषण का शिकार हो गये हैं जिससे उनकी सांस्कृतिक प्रगति एवं आध्यात्मिक उन्नति के मार्ग का अवरुद्ध होना स्वभाविक है। निरक्षरता के कारण कुल उत्पादन में ह्रास होता है, दूसरों पर निर्भरता में वृद्धि होती है। ग्रामीण लोग परिवार नियोजन कार्यक्रम को सही ढंग से नहीं अपना पाते। परिणामतः गरीब वर्गों की आबादी अबाध गति से बढ़ती जा रही है। विकास के सारे कार्यक्रम उन तक नहीं पहुंच पाते। विकास कार्यक्रम का लाभ बिचौलिया ऊपर-ऊपर ही उठा लेता है। इतना ही नहीं ये अपने बच्चों के लिए जीवन-रक्षक टीके लगवाने की बात भी नहीं समझ पाते। तब प्रश्न उठता है कि अज्ञानता एवं निरक्षरता की नींव पर राष्ट्र का चंहुमुखी विकास कैसे संभव होगा। इसीलिए राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने कहा था "करोड़ों लोगों का निरक्षर रहना भारत वर्ष के लिए कलंक और अभिशाप है। इससे मुक्ति पानी ही होगी।"

पूर्णतः आशावादी होना भले ही ठीक न हो लेकिन निराशावादी होना तो निश्चित ही बुरा है। निराशा हमें कोई दिशा नहीं दे सकेगी। अतः इस समस्या ने स्वर्गीय युवा प्रधानमंत्री श्री राजीव गांधी को सर्वाधिक मानस मंथन करने को आकर्षित किया। उन्होंने कहा कि "इन सभी समस्याओं का समाधान सरल नहीं, किंतु निरक्षरता मिटाना मानव संसाधन विभाग का महत्वपूर्ण अंग है, जिससे गरीबी हटाने से सम्बद्ध समस्त समस्याओं को कारगर ढंग से हल करने में मदद मिलेगी।" इसीलिए प्रौढ़ शिक्षा को 'साक्षरता मिशन' का रूप दिया गया।

मुख्यतः साक्षरता का संबंध बुनियादी तौर पर लोगों के जीवन से है। लोगों की मौलिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक उन्नति करना ही इसका ध्येय है। विज्ञान भवन में स्वर्गीय श्री राजीव गांधी ने कहा था "हमें साक्षरता का प्रयास केवल पढ़ने, लिखने तथा गणित सीखने तक ही सीमित नहीं रखना चाहिए और न ही यह हमारी मूल और परंपरा से अलग होना चाहिए। बल्कि हम इससे अपने परंपरागत मूल्यों, संस्कृति और पुरानी विरासत को सजीव बनायें तभी हम इस साक्षरता मिशन को सार्थक कर पायेंगे। फलतः साक्षरता कार्यक्रम भारत वर्ष के विभिन्न प्रांतों में आरंभ किया गया। इन तीनों आयामों के अतिरिक्त किसी व्यक्ति का दैनिक जीवन प्रभावित करने वाले सभी आयामों को भी इसमें शामिल किया जाना चाहिए। हमारा जोर साक्षरता एवं ग्रामीण विकास, साक्षरता एवं परिवार नियोजन, साक्षरता एवं स्वास्थ्य, साक्षरता एवं बेरोजगारी, साक्षरता एवं पर्यावरण, साक्षरता एवं कृषि आदि पर होना चाहिए।

ग्रामीण विकास के सारे आयामों को जनसंख्या वृद्धि अकेले अवरुद्ध कर देती है। भारत की आबादी अवाध गति से बढ़ रही है। वर्ष 1981 में 68.3 करोड़ जनसंख्या थी जो बढ़कर 1991 में 84.43 करोड़ हो गयी। सोलह करोड़ की यह वृद्धि शिक्षा एवं परिवार नियोजन कार्यक्रम जैसे कल्याणकारी कार्यक्रमों के लिए अभिशाप है। शिक्षा विकास की एक अनिवार्य शर्त है और साक्षरता शिक्षा की पहली सीढ़ी। इस तथ्य को बौद्धिक स्तर पर तो सभी स्वीकार करते हैं लेकिन अनेक ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक कारणों से इसे मूर्त रूप देने को सभी तैयार नहीं। सब लोग साक्षर हों और पढ़े-लिखे बंधु इन्हें साक्षर बनाने के लिए प्रयास करें, ऐसा विश्वास करने वाले कम हैं और कर दिखाने वाले तो और भी कम। सातवीं से दसवीं कक्षा तक के विद्यार्थी ही ज्यादातर स्वयंसेवक के रूप में कार्यरत हैं, जिन्हें खुद उत्तरदायित्व का बोध नहीं होता। परिणामतः देश के लगभग आधे लोग आज भी निरक्षर हैं। वर्ष 1971 में भारत में करीब 29 प्रतिशत लोग साक्षर थे। 1981 में साक्षरता की दर 36.23 प्रतिशत हो गयी। लेकिन इसी बीच निरक्षर लोगों की संख्या भी 38 करोड़ से बढ़कर 41 करोड़ हो गयी। इनमें से लगभग 24 करोड़ लोग 15 वर्ष से बड़े थे। निरक्षर महिलाओं की संख्या करीब 14.5 करोड़ थी जबकि 1991 की जनगणना के अनुसार सात वर्ष के ऊपर के निरक्षरों की संख्या देश में 32.40 करोड़ है। इस प्रकार पिछले दस वर्षों मे निरक्षरों की संख्या में थोड़ा सुधार हुआ है। अतः अशिक्षा के कारण जनसंख्या बढ़ रही है जिससे ग्रामवासी गरीबी, बीमारी, बेरोजगारी का असहनीय बोझ ढोता हुआ परेशान है। इतना ही नहीं लोग

साक्षरता के अभाव में अंगूठे का निशान लगाने के लिए मजबूर हैं। पत्र पढ़वाने के लिए दूसरों का दरवाजा खटखटाना पड़ता है।

स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क का निवास होता है। आम ग्रामीण गरीब शिक्षा के अभाव में अस्वस्थ रहते हैं। भूत-प्रेत, ओझा डायन में ज्यादा विश्वास करते हैं। गांव के स्वास्थ्य उपकेंद्र पर जाना नहीं चाहते। बीमारी के कारण वे कमजोर हो जाते हैं, कमजोरी के कारण काम नहीं मिल पाता। यदि मिलता भी है तो कम मजदूरी पर काम करना पड़ता है, जिससे गुजारा नहीं हो पाता। यानी ये गरीबी, अशिक्षा के चक्रव्यूह में फंसे रहते हैं। जिसका उद्धार इन्हें साक्षर बनाकर ही किया जा सकता है। पढ़ने लिखने के बाद ही इन्हें सफाई का ज्ञान होगा कि साफ रहने मात्र से ही आधी बीमारी का इलाज हो जाता है।

आज विश्व, सूचना-क्रांति युग से गुजर रहा है। जीवन के विभिन्न आयाम—कृषि, उद्योग, स्वास्थ्य, शिक्षा, पर्यावरण सबमें नये-नये परिवर्तन हो रहे हैं। ऐसे में साक्षरता का विशेष महत्व हो जाता है। जुलाई 1992 में उच्चतम न्यायालय ने फैसला दिया कि शिक्षा पाना एक नागरिक का मौलिक अधिकार है। फलतः संवैधानिक धरातल पर साक्षरता के प्रश्न पर विधिवत विचार मंथन शुरू हुआ। यह माना जाने लगा कि किसी भी देश की सबसे बड़ी पूंजी मानव है। यदि इनमें सृजनात्मक शक्ति का अभाव हुआ तो देश बर्बाद हो जायेगा। मानव-जीवन से सम्बद्ध कोई आयाम, चाहे वह कृषि हो, पशुपालन हो, नौकरी हो, या दैनिक मजूदरी सभी के लिए एक स्तर तक शिक्षित होना अनिवार्य है। फसल की सिंचाई का उचित समय,उत्तम बीज, खाद एवं कीटनाशक दवाओं के प्रयोग की विधि, पशुओं के लिए उचित आहार, बीमार पशुओं के लिए दवा, कुटीर एवं लघु उद्योग के लाभ, पर्यावरण-प्रदूषण आदि की जानकारी साक्षरता के अभाव में नहीं मिल पाती। एक साक्षर ग्रामीण किसान अपने खेतों में उन्नत बीज का प्रयोग कर सकता है।इतना ही नहीं प्रायः देखा जाता है कि अनपढ़ रूढ़िवादी ग्रामीण किसान अपने पुराने परपंरागत भंडारगृहों में ही अनाज रखते हैं तथा उसी अनाज को बीज के रूप में खेतों में प्रयोग करते हैं। उनका भंडारगृह वर्षा ऋतु में प्रायः नमीयुक्त हो जाता है जिससे अनाज की अंकुरण शक्ति क्षण हो जाती है तथा फसल अच्छी नहीं हो पाती। परिणामतः उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार के बजाय ह्रास होता है।

आज विभिन्न व्यावसायिक बैंकों द्वारा ग्रामीण गरीबों के कल्याणार्थ वित्तीय सहायता दी जाती है जिसके लिए बहुत सारे फार्म भरने पड़ते हैं तथा हस्ताक्षर करने पड़ते हैं। ऐसी स्थिति में अंगूठा छाप ग्रामीण गरीब आसानी से बिचौलियों, सफेदपोशों के हाथों में आ जाते हैं तथा उन्हें प्राप्त राशि की बंदरबाट हो जाती है। कुछ लोग दलील देते हैं कि 60-65 वर्ष के बुर्जुगों को साक्षर बनाकर क्या होगा? इस साक्षरता अभियान से कोई विद्वान तो होगा नहीं, नौकरी तो मिलेगी नहीं, तब इन्हें साक्षर क्यों बनाया जाये? लेकिन जरा सोचिए 65 वर्ष के बुढ़े का इकलौता बेटा बीमार है। उसकी देख-रेख के साथ-साथ समय पर दवा भी खिलानी है। कई दवाएं ऐसी होती है जिसका रंग एक जैसा होता है। ऐसी परिस्थिति में अक्षर ज्ञान के अभाव में गलत दवा बीमार व्यक्ति को दी जाए तो उसका परिणाम भंयकर हो सकता है। अतः आज के आधुनिक तकनीकी युग में एक सामान्य स्तर तक सबको साक्षर बनाना अनिवार्य है।

इसके अलावा एक महत्वपूर्ण ध्यान देने योग्य बात यह है कि निरक्षर जनसंख्या में महिलायें अधिक है। यह अत्यंत दुर्भाग्यपूर्ण है कि मानव-जाति के विकास का उत्तरदायित्व का बोझ जिन माताओं पर है, उनमें से अधिकांश निरक्षर हैं। एक अनुमान के अनुसार हर तीन महिलाओं में से दो निरक्षर हैं। शिक्षा के अभाव में ग्रामीण महिलाएं परिवार नियोजन कार्यक्रम को नहीं अपना पातीं तथा पुरुषों के लिए मनोरंजन का साधन बन जाती हैं। एक बच्चे को पाल-पोस भी न सकी तब तक दूसरा बिना निमंत्रण के आ धमकता है जिससे उनका स्वास्थ्य गिरता जाता है। परिवार का आकार बड़ा होता जाता है। बच्चों को पढ़ाने-लिखाने की बात तो दूर रहीं, जच्चा-बच्चा दोनों अनेक घातक बीमारियों से ग्रसित हो जाते हैं। इस प्रकार जिनके कंधों पर देश के कर्णधारों का भविष्य दिया गया है वह खुद निरक्षरता का शिकार हो बर्बाद हो जाती हैं। ऐसे में देश का बर्बाद होना स्वाभाविक है।

कहा जाता है कि किसी प्रदेश, राष्ट्र व समाज का भविष्य वहां की शिक्षा पर निर्भर करता है। जो देश जितना ही साक्षर होगा वह उतना ही उन्नति के शिखर के निकट होता है। उदाहरणार्थ अमरीका, यूरोप के देश या पहले के सोवियत संघ या सिंगापुर आदि तो छोड़ ही दीजिए, लैटिन अमरीका और अफ्रीका के भी अधिकांश देश साक्षरता में भारत से बहुत आगे हैं। सन् 1990 में फिलीपीन्स में 90 प्रतिशत, अर्जेंटीना में 95 प्रतिशत, चिली में 93 प्रतिशत, जमाइका में 98 प्रतिशत, क्यूबा में 94 प्रतिशत और कोरिया में 96 प्रतिशत साक्षरता थी। चीन की सांक्षरता उस समय 73 प्रतिशत थी। इसीलिए भारत में 1994-95 तक सभी को साक्षर बनाने का लक्ष्य निर्धारित किया गया। आठवीं योजना में साक्षरता अभियान के अंतर्गत 345 जिलों को शामिल करने का प्रस्ताव है। अब प्रश्न

साक्षरता हो या न हो का नहीं है बल्कि जितना जल्द हो सके पूर्ण साक्षरता को प्राप्त करना है। अभी ग्रामीण क्षेत्र के हरिजन के बच्चे विद्यालय नहीं जाते। कहीं-कहीं हरिजन टोली में विद्यालय है, वहां 6 से 11 वर्ष के सभी बच्चों का नामांकन तो है लेकिन वे सभी पढ़ने नहीं जाते या कुछ दिनों तक सिर्फ स्कूल जाकर फिर छोड़ देते हैं।कुछ जो पढ़ने जाते हैं,ज्यादा से ज्यादा आठवीं कक्षा तक पढ़कर छोड़ देते हैं। परिणामतः हमारा देश तेजी से पीछे की ओर खिसकता जा रहा है। अमीर और गरीब के बीच की खाई और चौड़ी होती जा रही है। एक तरफ शहर में आधुनिक अंग्रेजी स्कूल तो दूसरी तरफ देहात में झोपड़ीनुमा स्कूल, जिसमें अध्यापक सिर्फ अपनी हाजिरी बनाने तथा बच्चों को हाजिरी लेने जाते हैं। इसीलिए ग्रामीण क्षेत्र के मध्यवर्गीय लोगों का तेजी से शहरों की ओर पलायन हो रहा है। जिस देश के तीन चौथाई लोग गांवों में रहते हैं वहां के लोगों की यह दर्द भरी कहानी है।

"समय" एक खजाना है। जीवन के लाखों सेकेंड बीत रहे हैं। कितने सेकेंड सफल तो कितने विफल होते रहते हैं। परंतु हमें अपना जीवन सफल करने का ध्येय बनाना है। समय के महत्व को जानना है तथा समय को सफल करने की विधि को जानना है। गांव के पढ़े-लिखे युवकों के लिए साक्षरता एक चुनौती बन कर खड़ा है। इस चुनौती को हमें ही स्वीकारना है। गांव में साक्षरता के लिए पर्याप्त मात्रा में पढ़े-लिखे लोग हैं। उन्हें एक स्वयंसेवक के रूप में गांव के निरक्षर लोगों को साक्षर बनाना है। गांव में रहने वाले स्कूल, कॉलेज के विद्यार्थी, शिक्षक, पढ़ी-लिखी लड़कियां, सेवानिवृत्त अन्य लोग इस कार्य को अधिक दायित्वपूर्ण ढंग से कर सकते हैं। अपने घर तथा गली-मुहल्ले के निरक्षर लोगों को आसानी से साक्षर बना सकते हैं। प्रायः देखा जाता है कि किसी एक दरवाजे पर बैठकर पूरे मोहल्ले की निरक्षरता रिपोर्ट तैयार कर ली जाती है जिससे सरकार के पास गलत रिपोर्ट पहुंचती है। अतः हमारे स्वयंसेवकों को दरवाजे-दरवाजे जाकर जनसंपर्क कर रिपोर्ट तैयार करनी चाहिए तभी साक्षरता के लिए की सही-सही जानकारी मिल सकेगी। कुछ स्वयंसेवकों का कहना है कि हम अपना बहुमूल्य समय नौकरी के लिए प्रतियोगी परीक्षा की तैयारी में लगा रहे हैं, हम क्यों अपना समय बर्बाद करें? उन स्वयंसेवकों में देश के प्रति चेतना जगाने की जरूरत है। स्वयंसेवकों का व्यवहार आदरपूर्ण होना चाहिए। शिक्षार्थियों में यह विश्वास हो कि उनमें सीखने की पर्याप्त क्षमता है, सिर्फ उस क्षमता को जगाना है। साक्षरता शुरू में भले ही नीरस लगे लेकिन इसका परिणाम अच्छा होता है। इसकी सफलता की सार्वजनिक रूप से प्रशंसा करनी चाहिए। प्रशिक्षणार्थियों के लिए मनोरंजन की व्यवस्था होनी चाहिए। महिलाओं के लिए स्वास्थ्य एवं परिवार नियोजन से समृद्ध पुस्तक, बुकलेट एवं पोस्टर की व्यवस्था करनी चाहिए। बालकों के लिए बाल साहित्य तथा वृद्धों के लिए आध्यात्मिक पुस्तकों की व्यवस्था की जानी चाहिए। साक्षरता से सम्बद्ध लघु कथा, कविता, तथा हास्य-व्यंग्य आदि पठनीय सामग्री उपलब्ध करानी होगी। इतना ही नहीं प्रखंड स्तर पर विद्वानों द्वारा साक्षरता पर सेमिनार की व्यवस्था भी की जानी चाहिए। तभी देश का सर्वतोन्मुखी विकास संभव होगा।

ग्राम पो० पसौर,
जिला - भोजपुर,
पिन - 802233

पाठकों के विचार

इस पत्रिका में 'पाठकों के विचार' नाम से एक नया स्तंभ प्रारंभ किया गया है। इस स्तंभ में पाठकगण ग्रामीण विकास के विभिन्न पहलुओं पर अथवा इस पत्रिका में प्रकाशित लेखों पर अपने विचार भेज सकते हैं। ये विचार ढाई सौ शब्दों से अधिक न हों और सम्पादक, कुरुक्षेत्र, कमरा न० 467, कृषि भवन, नई दिल्ली-110001 के पते में भेजे जाएं।

इसके लिए कोई पारिश्रमिक देय नहीं होगा परंतु उन पाठकों को पत्रिका की एक प्रति भेजी जाएगी जिनके विचार इस स्तंभ में प्रकाशित होंगे।

—सम्पादक

ग्रामीण विकास और महिला साक्षरता

✍ सुभाष चन्द्र सत्य

यह बात अब सभी स्तरों पर स्वीकार कर ली गयी है कि यदि भारत को आर्थिक दृष्टि से संपन्न और आत्मनिर्भर बनाना है तो उसके गांवों का विकास अनिवार्य है। कारण साफ है। न केवल देश की लगभग तीन चौथाई आबादी गांवों में रहती है बल्कि हमारे देश के आर्थिक विकास की जड़ें भी गांवों में ही मौजूद हैं। इसके अलावा आर्थिक विकास की सबसे बड़ी शत्रु अर्थात् निर्धनता का प्रकोप भी गांवों में सर्वाधिक है। इसलिए स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में ही ग्रामीण विकास पर जोर दिया जाने लगा था। स्वतंत्रता के पश्चात् योजनाबद्ध विकास की प्राथमिकताओं में ग्रामीण विकास को काफी ऊंचा स्थान मिलता रहा। समय-समय पर गरीबी उन्मूलन और रोजगार की परियोजनाएं केन्द्र एवं राज्य सरकारों ने चलाई। अब केवल सड़कें बनाना, स्कूल खोलना, औषधालय शुरू करना या पंचायत घर बना देना ही ग्रामीण विकास नहीं कहा जाता। वास्तव में ग्रामीण विकास की अवधारणा बहुत व्यापक बन चुकी है, जिनका मुख्य उद्देश्य सामाजिक असमानताएं कम करते हुए लोगों के रहन-सहन में सुधार लाना है। यह प्रसन्नता की बात है कि हमारे योजनाकार बदलती हुई परिस्थितियों के अनुरूप ग्रामोत्थान की योजनाओं के स्वरूप तथा अन्य पहलुओ में आवश्यक परिवर्तन करते रहे हैं जिससे क्षेत्रीय एवं स्थानीय परिस्थितियों के अनुकूल कार्यक्रम बनाना संभव हो सका है।

उपेक्षित वर्ग

ग्रामीण विकास के प्रति सरकार तथा योजनाकारों की गहरी चिंता और गरीबी दूर करने के विभिन्न उपाय किए जाने के बावजूद इस सच्चाई से इंकार नहीं किया जा सकता कि लक्ष्य के मुकाबले हमारी उपलब्धियां बहुत कम हैं। पिछले चार दशकों से अधिक समय के विकास प्रयासों का हमारा अनुभव बताता है कि राष्ट्रीय जीवन के अनेक क्षेत्रों में सराहनीय प्रगति तो हुई है किंतु उसके लाभ बहुत कम और खासकर शहरी लोगों तक सीमित रहे हैं। गांवों में बसी देश की दो तिहाई से अधिक आबादी और उनमें भी अनुसूचित जनजातियों, पिछड़े वर्गों तथा अन्य कमजोर वर्गों के लोग इन लाभों से वंचित रहे हैं। इन उपेक्षित वर्गों से सबसे अधिक संख्या महिलाओं की है। संविधान में लिंग के आधार पर भेदभाव न करने की व्यवस्था के बावजूद सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं शैक्षिक, सभी स्तरों पर महिलाएं पुरुषों की तुलना में काफी पीछे हैं। ग्रामीण महिलाओं की स्थिति और भी बदतर है क्योंकि एक तो ग्रामीण होने के कारण सारे लाभ उन तक नहीं पहुंचते और जो लाभ उपलब्ध होते हैं, उनसे महिलाएं होने के कारण वे वंचित रह जाती हैं। परंपरागत सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टिकोण की चुभन तो उन्हें झेलनी ही पड़ती है, शहरी महिलाओं की भांति शिक्षित और जागरूक न होने के कारण नए विकास कार्यों के लाभ भी पूरी तरह नहीं उठा पा रही हैं। महिलाओं विशेषकर ग्रामीण महिलाओं को इस दोहरी उपेक्षा से बचने में सक्षम बनाने के उद्देश्य से महिला एवं बाल विकास विभाग ने 1988 से 2000 तक की अवधि के लिए महिलाओं की राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य योजना तैयार की है। इस दस्तावेज में भारत में महिलाओं की दुखद स्थिति, उनके कारणों तथा पृष्ठभूमि का वैज्ञानिक विश्लेषण करने के साथ-साथ उनकी दशा में सुधार लाने की दिशा स्पष्ट करते हुए व्यावसायिक उपायों की सिफारिश की गयी है। इस योजना का मूल भाव यह है कि राष्ट्रीय जीवन के सभी क्षेत्रों में महिलाओं को बराबर का भागीदार बनाया जाए क्योंकि इस तरह की भागीदारी से ही महिलाओं में आत्म-विश्वास पैदा होगा।

स्वावलंबन और आत्म-सम्मान

इस सच्चाई से इंकार नहीं किया जा सकता कि हमारे देश में ही नहीं, दुनिया के लगभग सभी देशों में महिलाओं को पुरुषों की तुलना में कम महत्व दिया जाता है। इनमें हमारी परंपरागत सामाजिक व सांस्कृतिक मान्यताओं तथा आर्थिक नीतियों का योगदान रहा है। हमारे देश में गांवों में यह लिंगभेद शहरों से कहीं अधिक है। गांवों में महिलाएं आर्थिक लाभ के अनेक कार्यों में हाथ बंटाती हैं परंतु उन्हें परिवार के कमाऊ सदस्य का दर्जा हासिल नहीं है। खेतों में काम करना, पशु-पालन, दूध दोहना, मुर्गी, सूअर पालन, घास काटना, पशु चराना आदि अनेक आर्थिक गतिविधियों में लगे होने के बावजूद महिलाओं के आर्थिक योगदान को कोई मान्यता प्राप्त नहीं है। उन्हें भूमि के मालिकाना हक प्राप्त नहीं हैं और न ही पशु मवेशी उनके नाम से खरीदे-बेचे जाते हैं। महिलाओं, विशेषकर अनपढ़ महिलाओं को, मजदूरी के सिवाय और किसी व्यवस्था के योग्य नहीं माना जाता। विभिन्न शिल्पों

तथा व्यवसायों में उन्हें प्रशिक्षण देने की समाज ने कभी चिन्ता नहीं की। पारिवारिक काम धंधों में केवल लड़कों को ही आगे बढ़ाने की परपंरा के कारण महिलाएं चूल्हा-चक्की तक ही सीमित रहती हैं। इसके अलावा ग्रामीण सुविधाओं यहां तक कि महिलाओं से संबंधित सुविधाओं के बारे में निर्णय लेने की प्रक्रिया में भी महिलाओं की कोई सहभागिता नहीं रहती। ग्रामीण राजनीति में महिलाओं की सार्थकता लगभग नगण्य है। कहने का मतलब यह है कि शारीरिक श्रम की दृष्टि से पुरुषों से अधिक योगदान करने के बाद भी महिलाओं को पुरुषों के बराबर तो दूर, परिवार व समाज का उत्पादक एवं उपयोगी सदस्य भी नहीं माना जाता। सब कुछ करते हुए भी वह परावलंबी रहती है। पंचायतों में पहले तो महिलाओं के सदस्य बनने में ही रोड़े अटकाए जाते हैं और यदि कहीं वे सदस्य चुन भी ली जाती हैं तो उनके सुझावों और टिप्पणियों की उपेक्षा की जाती है।

जागरूकता की कमी

जैसा कि प्रारंभ में बताया गया है ग्रामीण महिलाओं की इस उपेक्षित और शोचनीय स्थिति के अनेक कारण हैं किंतु सबसे बड़ा कारण है उनमें अपेक्षित जागरूकता न होना। महिलाओं की जागरूकता और उनकी निर्भीकता व साहस को सामाजिक दृष्टि से अच्छा नहीं माना जाता। लड़कियों को बचपन से ऐसी शिक्षा दी जाती है कि वे किसी भी अन्यायपूर्ण व अनुचित बात का विरोध करने की बजाय चुपचाप स्थिति को स्वीकार कर लें। अब तक किए गए अनेक अध्ययनों से यह सच्चाई उभर कर सामने आई है कि शिक्षा के प्रसार से ही लड़कियों में अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता तथा आत्मविश्वास पैदा किया जा सकता है। इसमें कोई संदेह नहीं कि यह प्रक्रिया बहुत लंबी और कठिन है, परंतु इसके बिना देश को समृद्ध एवं उन्नत बनाने का सपना पूरा होना असंभव है। हम जानते हैं कि सरकार करोड़ों रुपये खर्च करके गांवों में रोजगार, महिला एवं बाल कल्याण, प्रशिक्षण तथा गरीबी उन्मूलन के अनेक कार्यक्रम चला रही है जिनमें महिलाओं को लाभ पहुंचाने के विशेष प्रावधान किए गए हैं। पंचायती राज के नए संविधान संशोधन विधेयक में 30 प्रतिशत स्थान महिलाओं के लिए आरक्षित किए गए हैं। परंतु महिलाएं अपने लाभ के लिए अपने ही दरवाजे पर चल रहे कार्यक्रमों का लाभ नहीं उठा पा रही हैं क्योंकि अनपढ़ होने के कारण वे इन कार्यक्रम के बारे में कुछ भी नहीं जानतीं। इसलिए महिलाओं को शिक्षित करने एवं साक्षर बनाने पर विशेष बल दिया गया है। 1991 की जनगणना के आंकड़ों के हिसाब से देश की साक्षरता दर 52.5 प्रतिशत हो गयी है किंतु महिलाओं की साक्षरता दर 39.4 प्रतिशत है। दूसरे शब्दों में 1991 में 33 करोड़ 22 लाख निरक्षर थे, जिनमें 22 करोड़ 21 लाख महिलाएं थीं। परंतु महिला साक्षरता दर की वृद्धि की दृष्टि से पिछला दशक अच्छा रहा। 1981 में 29.8 प्रतिशत महिलाएं साक्षर थीं, जबकि 1991 में 39.4 प्रतिशत स्त्रियां साक्षर हो गयीं। इस प्रकार महिलाओं की साक्षरता दर में 9.6 प्रतिशत की बढ़ोतरी हुई, जबकि पुरुषों में साक्षरता की वृद्धि दर पिछले दशक के दौरान 7.5 प्रतिशत रही। परंतु एक दशक की इस मामूली सी छलांग से हम यह नहीं कह सकते कि महिलाओं को पूर्ण साक्षर बनाने के मामले में हम मंजिल के करीब पहुंच गये हैं।

शिक्षा सुविधाएं

शिक्षा समाज के उत्थान का सबसे मूल्यवान निवेश है। इसलिए हमारे संविधान के नीति निर्देशक सिद्धांतों में 14 वर्ष तक की आयु के सभी बच्चों के लिए अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था करने की अपेक्षा की गयी है। देश की जनसंख्या में लगातार बढ़ोतरी होने और आर्थिक असमानता तथा गरीबी में अपेक्षित कमी न आ पाने के फलस्वरूप इस लक्ष्य को प्राप्त करने में हम विफल रहे हैं। यद्यपि इस दिशा में प्रयास 1950 के दशक से ही प्रारंभ हो गए थे। 1951 में प्राथमिक स्कूलों की संख्या 2.20 लाख थी जो बढ़कर 1991-92 में 5.66 लाख हो गयी। कुछ राज्यों में तो एक किलोमीटर तक की दूरी पर ही प्राथमिक स्कूल उपलब्ध करा दिया गया है। स्कूलों में दाखिला लेने वाले बच्चों की संख्या भी इन वर्षों में बढ़ी है परंतु लड़कियों की संख्या लड़कों की तुलना में कम रही है। उदाहरण के लिए प्राथमिक कक्षाओं में 1991-92 में 5.92 करोड़ लड़कों व 4.23 करोड़ लड़कियों ने प्रवेश लिया। माध्यमिक कक्षाओं में यह अंतर और बढ़ जाता है। इन कक्षाओं में 1991-92 में दाखिला लेने वाले लड़कों की संख्या 2.14 करोड़ तथा लड़कियों की केवल 1.3 करोड़ थी। अनुसूचित जातियों व जनजातियों की लड़कियों की प्रवेश दर काफी कम है।

समस्या का अधिक गंभीर पहलू यह है कि दाखिला लेने के बाद बहुत सी लड़कियां अपनी पढ़ाई बीच में छोड़ देती हैं। पढ़ाई अधूरी छोड़ने की प्रवृत्ति लड़कों की तुलना में लड़कियों में अधिक पाई जाती है। इसके अलावा शहरों के मुकाबले गांवों में पढ़ाई पूरी किए बिना स्कूल छोड़ने वाले बच्चों की संख्या कंही अधिक होती है। एक उल्लेखनीय बात यह भी है कि प्राथमिक कक्षाओं की बजाय पांचवीं से आठवीं कक्षा के दौरान अधिक लड़कियां स्कूल छोड़ती

हैं। स्कूल छोड़ने की इस प्रवृत्ति के मुख्य कारण इस प्रकार है :

(क) मां बाप के काम पर चले जाने पर लड़कियों को छोटे भाई बहनों की देख रेख करनी पड़ती है।

(ख) परिवार की आय बढ़ाने के लिए लड़कियों को काम धंधे पर लगा दिया जाता है।

(ग) लड़कियों की कम उम्र में शादी कर दी जाती है।

(घ) किशोरावस्था में पहुंचने पर लड़कियों के घर से बाहर आने जाने पर सामाजिक प्रतिबंध लगाया जाता है।

(च) यह मान्यता कि स्कूलों के पाठ्यक्रम का उनके व्यावहारिक जीवन से कोई मेल नहीं होता।

शिक्षा के स्तर में सुधार

प्राथमिक स्कूलों में शिक्षा का स्तर सुधारने के लिए 1987 में आपरेशन ब्लैकबोर्ड नाम की योजना प्रारंभ की गयी। इसका उद्देश्य स्कूलों में शिक्षा तथा उससे जुड़ी अन्य सुविधाओं को बेहतर बनाकर स्कूलों को ऐसा रूप देना है जिसमें बच्चों का मन लगा रहे और बीच में पढ़ाई छोड़ने की प्रवृत्ति पर अंकुश लगे। इस योजना के अंतर्गत स्कूल के लिए पक्की इमारत बनाने, प्रत्येक स्कूल में कम से कम एक अध्यापक की व्यवस्था करने और पर्याप्त मात्रा में अच्छे स्तर की शिक्षण सामग्री उपलब्ध कराने पर विशेष ध्यान दिया जाता है। इस योजना को विभिन्न चरणों में देश के सभी विकास खंडों और नगरपालिका क्षेत्रों में लागू करने का निश्चय किया गया। 1992-93 में इस कार्यक्रम पर 99 करोड़ रुपये खर्च हुए। इस योजना में भी महिला शिक्षा पर अधिक ध्यान देने के उद्देश्य से यह प्रावधान किया गया कि कम से कम 50 प्रतिशत महिला अध्यापकों को नियुक्त किया जाये। 1987-88 के बाद से इस योजना के अंतर्गत एक लाख 22 हजार से अधिक अध्यापकों को नियुक्त करने की मंजूरी दी गयी है। अभी तक लगभग 70,000 पद भरे गए हैं, जिनमें से 57.39 प्रतिशत महिलाएं हैं।

ग्रामीण बच्चों को स्तरीय शिक्षा उपलब्ध कराने के लिए नवोदय विद्यालय योजना अत्यंत उपयोगी सिद्ध हुई है मार्च 1992 तक इन विद्यालयों में 78,149 बच्चों को प्रवेश मिला, जिनमें लड़कियों की संख्या 22,222 अर्थात् 28.44 प्रतिशत थी।

इन प्रयासों को और गति देने के विचार से राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद ने लड़कियों की पढ़ाई पूरी न हो पाने के कारणों का अध्ययन करने के लिए व्यापक सर्वेक्षण किया। इसके आधार पर परिषद से ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षकों, माता-पिता, प्रशासकों तथा अन्य संबंधित वर्गों से संपर्क करके उनके दृष्टिकोण में परिवर्तन लाने के कार्यक्रम चलाने का निर्णय किया है। इस तरह का पहला प्रयोग हरियाणा में शुरू किया गया है जिसमें लड़कियों को अनिवार्य रूप से शिक्षा देने के लिए जनमत तैयार करने के वास्ते 300 व्यक्तियों को प्रशिक्षण दिया गया। परिषद ने पाठ्य पुस्तकों से ऐसे अंश निकालने का भी कार्यक्रम हाथ में लिया है, जिनमें लड़कियों और महिलाओं के प्रति भेदभाव झलकता हो। यह प्रयास बहुत महत्वपूर्ण है, क्योंकि इससे महिलाओं के प्रति भेदभाव करने की सामाजिक मान्यताओं को बदलने में बहुत मदद मिलेगी।

साक्षरता अभियान

इन सभी प्रयासों के बावजूद करोड़ों बच्चे, विशेषकर लड़कियां, प्राथमिक एवं उच्च शिक्षा से वंचित रह जाती हैं। उन्हें साक्षर बनाने के लिए प्रौढ़ शिक्षा का सहारा लिया जाना है। यों तो प्रौढ़ शिक्षा का कार्यक्रम लगभग सभी राज्यों में पिछले तीन दशकों से चल रहा है परंतु उसके ठोस परिणाम सामने नहीं आये। 1988 में राष्ट्रीय साक्षरता मिशन की स्थापना के बाद प्रौढ़ शिक्षा को नई दिशा मिली और जल्दी ही यह जन-आंदोलन का रूप लेने लगी। सबसे सुखद परिवर्तन यह हुआ है कि यह अभियान मात्र सरकारी कार्यक्रम न रहकर समूचे समाज का कार्यक्रम बन गया है। स्वयंसेवी संस्थाओं, शिक्षाविदों, जन संचार माध्यमों, कलाकारों एवं संस्कृतिकर्मियों के सहयोग से शिक्षा का संदेश गांवों और दूर दराज के इलाकों में पहुंचाने में अपूर्व सफलता मिली है। लोक कलाओं, नाटकों, कीर्तन-भजन तथा संदेश पहुंचाने की अन्य स्थानीय शैलियों का उपयोग करते हुए गांवों की जनता को यह बताने का प्रयास किया जाता है कि लड़कियों को शिक्षा से वंचित करना पूरे परिवार के लिए हानिकारक है और एक लड़की के पढ़-लिख जाने से आने वाली पीढ़ियों का भी भाग्य बदल जाता है। इस अभियान के अंतर्गत लोगों को उनकी अपनी भाषा में और उनकी जानी पहचानी शैली में बात बताई जाती है, इसलिए वे जल्दी प्रभावित और प्रेरित होते हैं। केरल, गोआ, पांडिचेरी, तमिलनाडु, हरियाणा जैसे कुछ राज्यों में स्वयंसेवी संगठनों ने लोगों के जीवन में उल्लेखनीय परिवर्तन ला दिया है। इस अभियान में युवा वर्ग बढ़ चढ़ कर भाग ले रहा है।

साक्षरता अभियान की एक अन्य विशेषता यह है कि इसके अंतर्गत अल्प ज्ञान कराने के साथ-साथ सामाजिक कुरीतियों, अन्याय तथा महिला विरोधी धारणाओं के खिलाफ वातावरण बनाने में सफलता मिल रही है। महिलाएं अपने अधिकारों के प्रति जागरूक बनने के साथ-साथ सामाजिक कुरीतियों का भी विरोध

(शेष पृष्ठ 12 पर)

ग्रामीण शिक्षा : समस्याएं एवं समाधान

डा० बिन्दु भाटिया
डा० कृष्णा शर्मा

यह तो जगजाहिर है कि भारत गांवों का देश है। साथ ही यह भी सत्य है कि गांव के विकास के बिना भारत का चहुंमुखी एवं सर्वांगीण विकास नहीं हो सकता। भारत में छह लाख गांव हैं जहां लगभग 75 प्रतिशत जनसंख्या गांव में निवास करती है। यह सौभाग्य की बात है कि भारत के योजनाबद्ध विकास में ग्रामीण विकास को काफी प्राथमिकता दी गई। फलतः आजादी के इतने लंबे सफर के बाद गांवों में जनचेतना एवं जागृति बढ़ी है। विकास का संचार हुआ। आधारभूत सुविधाओं में भी वृद्धि हुई है। जहां तक शिक्षा का प्रश्न है गांव-गांव में शिक्षा का प्रचार एवं प्रसार किया गया है।

इतना सब कुछ होते हुए भी ग्रामीण विकास एवं ग्रामीण शिक्षा में अपेक्षित उपलब्धियां प्राप्त न हो सकीं। आज भी गांवों में गरीबी, बेरोजगारी, अशिक्षा, दरिद्रता और अज्ञानता का वर्चस्व है जो कि दुनिया के इस महत्वपूर्ण उपमहाद्वीप के लिए दुर्भाग्यपूर्ण है।

शिक्षा विकास की धुरी है

ग्रामीण शिक्षा ग्रामीण विकास की धुरी है। ग्रामीण शिक्षा का जितना प्रचार एवं प्रसार होगा एवं ग्रामीण शिक्षा के अंतर्गत जितनी गुणवत्ता आएगी, ग्रामीण विकास को उतनी ही अधिक गति मिलेगी। इसी संदर्भ में प्रोफेसर गुनार मिल्डन ने सही ही कहा है कि "बहुत बड़ी जनसंख्या को निरक्षर छोड़कर राष्ट्रीय विकास कार्यक्रम शुरू करने की बात निरर्थक मालूम होती है।" सही मायने में मनुष्य की पहली आवश्यकता रोटी है। रोटी की पूर्ति होने से यह आवश्यक नहीं है कि वह व्यक्ति शिक्षित भी हो जाए। किंतु यहां पर मेरे अनुसार मनुष्य की पहली आवश्यकता शिक्षा है जिसकी पूर्ति होने पर व्यक्ति अपनी सभी मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति सुलभता से कर सकता है बशर्ते उसे सही मायने में शिक्षित किया जाए। अतः शिक्षा विकास का एक महत्वपूर्ण अंग है। यह विकास के लिए नींव का पत्थर है। शिक्षा एवं विकास को एक दूसरे का पूरक भी कहा जाए तो अतिश्योक्ति नहीं होगी अर्थात बिना शिक्षा के विकास का कोई महत्व नहीं है एवं बिना विकास के शिक्षा का कोई महत्व नहीं है, अर्थात् शिक्षा विकास की वह धुरी है जिससे एक ऐसा सुंदर विकासरूपी महल खड़ा करके उसकी यथोचित देखभाल की जा सकती है। शिक्षा स्वयं के विकास के लिए, समाज के विकास के लिए एवं राष्ट्र के विकास के लिए अनिवार्य है अर्थात् मानव-जीवन के लिए अति आवश्यक है।

शिक्षा का मानव-जीवन में एवं विकास में इतना महत्वपूर्ण स्थान होने के बाद भी हमारे देश में ग्रामीण शिक्षा आज भी आधे अधूरे मन से दी जा रही है। ग्रामीण शिक्षा को योजनाओं में सर्वोच्च स्थान एवं प्राथमिकता देकर ही हम विकास रूपी सुंदर भवन खड़ा कर सकते हैं। ग्रामीण शिक्षा की इस दयनीय हालत से एक ओर सरकार के द्वारा चलाए जा रहे ग्रामीण विकास के कार्यक्रम का लाभ ग्रामीण लोगों को नही मिल पाता है, दूसरी ओर उनका कई स्तरों पर शोषण होता है। फलतः शोषक समूह की गिरफ्त में अशिक्षित ग्रामीण निकल ही नहीं पाता एवं पीढ़ी दर पीढ़ी वह इस दुष्चक्र में फंसा रहता है। अशिक्षित ग्रामीण लोगों को उन कार्यक्रमों का कतई मालूम नहीं होता जो उनके हितार्थ सरकार द्वारा चलाए जाते हैं। यदि किसी प्रकार से उन्हें मालूम चल भी जाता है तो वे निरक्षर ग्रामीण इस लाभ को प्राप्त करने हेतु साहस जुटा नहीं पाते। ऐसे में कुछ बिचौलिए इन निरक्षर ग्रामीण लोगों को बेवकूफ बनाकर खुद लाभान्वित हो जाते हैं एवं ग्रामीण निरक्षर व्यक्ति को कुछ नहीं मिल पाता।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि ग्रामीण शिक्षा के प्रचार व प्रसार के लिए काफी कुछ सरकार ने किया है। लेकिन ग्रामीण निरक्षरता इतनी जड़ एवं लम्बित समस्या है कि उसके समाधान के लिए एक सुयोग्य व कुशल अनुभवी चिकित्सक की आवश्यकता है एवं लंबे इलाज की आवश्यकता है। साथ ही ऐसे तंत्र की आवश्यकता है जो निरीह एवं कमजोर लोगों के प्रति संवेदनशील हो।

परिमाणात्मक उपलब्धियों के बतौर गांव में शिक्षा के विकासार्थ काफी कुछ किया गया किंतु गुणात्मक दृष्टिकोण से यदि देखा जाए तो आधे से अधिक प्राथमिक विद्यालय दयनीय हालत में हैं। जिनकी कई समस्याएं हैं। जैसे बिल्डिंग का अभाव, अध्यापकों का अभाव, नियमित छात्रों का अभाव, राजनीतिक

हस्तक्षेप, निरीक्षण व्यवस्था की कागजी कार्यवाही का होना। प्रशासनतंत्र की गांव में पहुंच उसी स्थिति में संभव है जब प्रशासनिक अधिकारियों को या तो गांव से कुछ मिलता हो या गांव में पहुंचना उनके लिए ऐसी मजबूरी हो जैसी कि घोड़े को पानी पीने के लिए तालाब पर ले जाया जा सकता है लेकिन पानी पीने के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता। ऐसी मजबूरी से ग्रामीण शिक्षा रूपी कल्पवृक्ष का पौधा न तो लगाया जा सकता है न ही उसे पोषित किया जा सकता है। सही मायने में ग्रामीण शिक्षा एक प्रकार से सरकार का एक ऐसा उपेक्षित कार्यक्रम है जिसको मजबूरी में ही हाथ में लेना पड़ा है। आज के इस भौतिकवादी युग में शिक्षक बनने की प्राथमिकताएं अंतिम हैं अर्थात् शिक्षक वे लोग बनते हैं जिन्हें अन्यत्र कहीं भी समकक्ष नौकरी नहीं मिलती। यह भी एक कटु सत्य है कि सामान्यतया एक पिता अपनी लड़की की शादी करने के लिए कई विकल्पों में शिक्षक को अंतिम पंक्ति में ही रखता है। कारण कुछ भी हो किंतु आज समाज में शिक्षक एक उपेक्षित वर्ग के रूप में गिना जाने लगा है। यदि कोई शिक्षक का कार्य करता है ता उसके बारे में शब्द यों होते हैं कि बेचारा मास्टर है। जिस देश में शिक्षक फटेहाल हो, उपेक्षित हो उस देश का भविष्य क्या होगा, विचारणीय है। देश की राजनैतिक गतिविधियों ने भी ग्रामीण शिक्षकों की गरिमा एवं सम्मान को काफी ठेस पहुंचाई है। इन सब समस्याओं के कारण ग्रामीण शिक्षक गांव में शिक्षा के लिए मात्र औपचारिक शिक्षक बनकर रह गया है। वह न ही विकास का वाहक है न ही शिक्षा का वाहक है और न ही ग्रामीण विकास के लिए एक कड़ी है।

ग्रामीण शिक्षा को आधेक गति देने के लिए शिक्षा को व्यक्ति का मौलिक अधिकार बनाया जाना चाहिए। ग्रामीण विद्यालयों को सुविधाओं एवं साज-सामानों से सुसज्जित किया जाना चाहिए। ग्रामीण विद्यालयों को खेल, सांस्कृतिक कार्यक्रम एवं विकास कार्यक्रमों से जोड़ा जाना चाहिए। प्राथमिक शिक्षा पर खर्च का प्रतिशत बढ़ाया जाना चाहिए। ऐसी कार्ययोजना बनायी जानी चाहिए ताकि शिक्षा एवं रोजगार में घनात्मक संबंध हो चूंकि गांव में ऐसी धारणाएं व्याप्त हैं कि पढ़ाने लिखाने के बाद यदि नौकरी नहीं मिलती है तो व्यक्ति कहीं का भी नहीं रहता। अर्थात् शिक्षित बेरोजगार न ही कृषि कार्य कर सकता है एवं न ही शारीरिक परिश्रम कर पाता है तथा ग्रामीण शिक्षित बेरोजगारों को उनके माता-पिता को लंबे समय तक निर्वाह का खर्चा देना पड़ता है। फिर शिक्षित व्यक्तियों में एक ओर दायित्व बोध एवं अनुशासन की कमी है दूसरी औश्र भौतिकवादिता के बढ़ने से उन पर ग्रामीण लोगों का विश्वास नहीं रह पाता है। ऐसे में ग्रामीण अपने बच्चों को शिक्षित करके निकम्मा नहीं बनाना चाहते। गांव में प्रमुख व्यवसाय कृषि है एवं अधिकांश लोग संयुक्त परिवार के रूप में रहते हैं। ऐसी स्थिति में अदृश्य बेरोजगारी होते हुए भी उन्हें अपने परिवार का कोई सदस्य बेरोजगार नहीं लगता।

आज कल एक ओर शिक्षित लोगों को खर्चों पर प्रदर्शन के कारण वृद्धि एवं विविधता आई है। फलतः शहर में एक विद्यार्थी के रहने व खाने का वार्षिक नकद खर्च इतना अधिक होता है कि उसके समान खर्च में कृषक का पूरा परिवार अपना कार्य चलाता है। परिवार का मुखिया इतना आर्थिक दबाव इसलिए वहन करता है कि भविष्य में बेटा अफसर बनेगा। किंतु दुर्भाग्यवश. सामान्यतया इसके विपरीत होता है कि उच्च शिक्षा पाकर या तो बेटे को लम्बे समय तक बेरोजगार रहना पड़ता है या बड़ी इंतजार के बाद बेटा नौकरी पर आ भी जाता है तो उसे शैक्षिक संस्कार ग्रामीण परिवार से अलग कर देते हैं। विवाह के पश्चात् ग्रामीण बेटे का परिवर्तन शहरी बेटे में हो जाता है। इसके परिणामस्वरूप कई आधुनिक शिक्षित नवयुवक तो अपने निरक्षर माता-पिता को ड्रांइग रूम में बिठाने में भी शर्म महसूस करने लग जाते हैं। गांवों में ऐसे व्यवहार का प्रचार आग की तरह फैलता है। भारतीय शिक्षित लोगों ने निरक्षर लोगों के सामने ऐसा आदर्श प्रस्तुत नहीं किया है जिससे प्रभावित होकर ग्रामीण व्यक्ति शिक्षा को अत्यावश्यक मानते हुए अपने बच्चों को शिक्षा दिलाने हेतु उत्सुक हो।

बी-352, मालवीय नगर,
जयपुर, राजस्थान - 302017

कहानी

कसक

सुधीर ओखदे

वह घटना आज भी मेरे मन मस्तिष्क को विचलित कर जाती है। ऐसा क्यों होता है जबकि उस घटना को वर्षों बीत गये हैं। मेरे वर्तमान जीवन से उसका कोई संबंध नहीं है। आने वाले समय में भी शायद ही कभी उस घटना का महत्व मेरे जीवन में आये। लेकिन क्यों जब किसी निराधार, असहाय, प्रतिभाशाली लेकिन गरीब लड़के को सत्ता, प्रतिष्ठा और पैसे के बल पर जब कोई लड़का पीछे छोड़ने की कोशिश करता है तो मन में एक टीस सी उठती है, वह जख्म फिर हरा हो जाता है जो शायद कभी भरा ही न था।

घटना काफी मामूली-सी है। आप तो शायद उसे महत्वहीन हीं मानें लेकिन कोई मेरे दिल से पूछे उसका महत्व। उसने तो मुझे आज तक पीड़ा पहुंचाई है और पता नहीं कब तक मैं उस वेदना को सहता रहूंगा। कोई आशा की किरण भी तो नजर नहीं आती। क्या करूं? क्या अपने उस प्राथमिक विद्यालय के शिक्षक का अपमान करूं?

'पांडे सर' मुझे बहुत अच्छे लगते थे। उस विद्यालय के बाद उच्चतर माध्यमिक शिक्षण एवं बाद में स्नातक अभ्यास महाविद्यालय में शिक्षक बदले, नये-नये लैक्चर, प्रोफेसर्स की इस लंबी कतार में वे छोटे से स्कूल के धोती कुर्ता पहनने वाले, सभी विद्यार्थियों को प्यार करने वाले 'पांडे सर' अभी भी याद आते हैं। लेकिन क्या उन्हीं कारणों से जिसका जिक्र मैंने अभी किया। नहीं! कारण तो वह घटना है जिसने आज तक मुझे वेदना पहुंचायी है।

सुस्वभावी, मृदुभाषी, सौम्यता की प्रतिमूर्ति आदर्श शिक्षक की उपाधि से विभूषित 'पांडे सर' ने शायद जीवन में प्रथम बार किसी विद्यार्थी के साथ अन्याय किया होगा और शायद यह अन्याय उनसे अनजाने में ही हुआ होगा। लेकिन उसका शिकार मैं, जो उस शिक्षक को देवता तुल्य मानता था आज तक उनसे उस घटना का स्पष्टीकरण चाहता हूं। 'क्यों सर? ऐसा क्यूं? क्या सिर्फ इसलिये कि अतुल नगर के प्रतिष्ठित डॉक्टर का बेटा था और आप उस प्रतियोगिता के एकमात्र निर्णायक थे।'

'सर' दौड़ में एक ही लड़का सीमा रेखा पर पहले पहुंचता है और वह मैं था, मैं? लेकिन फिर भी पारितोषिक वितरण समारोह में अतुल को प्रथम घोषित किया गया। मेरे बाल मन की अर्थी उठाते आपकी सज्जनता, सौम्यता, आदर्श शिक्षक इत्यादि गुण कहां गये थे? मैं जानता हूं। अतुल और मेरे बीच कम से कम 20 गज का फासला था। मैने सीमारेखा की रस्सी तोड़ी थी। अतुल तो काफी देर बाद वहां तक पहुंचा था। आपकी प्रशंसा का लालायित मैं टुकुर-टुकुर आपको ताक रहा था कि अब आप मुझे प्यार करते हुए कहेंगे 'शाबास बहादुर।' कक्षा दो का विद्यार्थी इससे ज्यादा और क्या चाहता है? लेकिन आपने तो मेरी तरफ देखा ही नहीं। मैं दौड़ में प्रथम आया विद्यार्थी अकेला ही अपनी जीत की खुशी मना रहा था। शिक्षक का प्यार न सही, उस विजय की सूचना अपनी मां और पापा को सुनाने का लोभ शायद मैं संवरण न कर सका। बस दौड़ गया था घर की ओर बेतहाशा।

मिला, आत्मीय प्यार भी मिला मुझे उस दिन। कितनी देर तक आंखों में पानी लिये मां मुझे सीने से लगाये रही और बाद में जो भी दिखता बस शुरू हो जाती। 'अरे सुना! आज बिट्टू ने तो कमाल ही कर दिया। ऐसा दौड़ा ऐसा दौड़ा कि बस पूछो मत, पूरे मैदान में बिट्टू ही बिट्टू दिख रहा था।' मां तो मेरा ऐसा वर्णन कर रही थी कि जैसे उस दौड़ की वह चश्मदीद गवाह हो। यह वह नहीं, उसकी ममता बोल रही थी। सच कहा है कि किसी ने कि मां की ममता का मूल्य बेटा जीवन में कभी नहीं चुका सकता। शाम को जब पापा आफिस से आये तो फिर मां का वही बिट्टू पुराण आरंभ हो गया था। पापा ने अपनी उसी चिर परिचित आवाज में कहा था "कीप इट अप" उस वाक्य का अर्थ तब तो समझ में नहीं आया था लेकिन मेरी हर सफलता पर पापा का यही वाक्य होता था। यह वाक्य मुझे धैर्य, हिम्मत सभी कुछ देता था। इतने वर्षों बाद आज भी मैं पापा से इस वाक्य की अपेक्षा हमेशा करता हूं।

उस दिन भी पापा ने पीठ पर हाथ फेरते हुए ऐसा ही कहा था। दूसरे दिन स्कूल में कल सम्पन्न हुई प्रतियोगिताओं की चर्चा थी। साथियों की तरफ से मुझे बधाइयां मिल रही थीं। मैं दूसरे विजेता छात्रों को बधाई दे रहा था। 'पांडे सर' आज भी पता नहीं क्यों उखड़े-उखड़े से दिख रहे थे। हमेशा की तरह आज उन्होंने मुझसे "क्यों बहादुर" यह वाक्य नहीं कहा। उनके इस सम्बोधन

की तो मुझे आदत-सी पड़ गयी थी जब भी उनसे सामना होता हमेशा प्यार करते हुए कहते "क्यों बहादुर"। शायद केवल इन शब्दों द्वारा ही वो मेरे प्रति अपने प्यार को प्रकट करते थे।लेकिन आज तो उन्होंने मुझे देखकर भी अनदेखा कर दिया था।" जो सर मुझे इतना प्यार करते हैं तो मेरी जीत पर मुझे बधाई क्यों नहीं दे रहे। वे आज मुझसे बात क्यों नहीं कर रहे?" मेरी बाल बुद्धि शायद इससे आगे सोचने में असमर्थ थी कुछ तो भी ऐसा हो रहा है जो नहीं होना चाहिये बस इतनी ही समझ थी।

पारितोषिक वितरण के दिन मैं काफी उत्साही था। जीवन का पहला पारितोषिक और वह भी प्रथम पुरस्कार। रातभर नींद नहीं आयी। मां ने मेरे नये कपड़े कल ही प्रेस करके रख दिये थे। मुझे वही पहन कर पुरस्कार लेना था। पापा ने पुरुस्कार कैसे ग्रहण किया जाता है इसका साभिनय वर्णन करके बताया था। मुझे तो हंसी ही आ गई थी। पहले पुरस्कार देने वाले को नमस्कार करो, फिर वापस दर्शक दीर्घा को भी झुक कर नमस्कार करो। छी! शरम ही नहीं आ जायेगी? पैर नहीं कांपने लगेंगे?

और वह नामुराद दिन भी आया। मेरे साथ मां और पापा भी आये थे। मुख्य अतिथि के रूप में अतुल के पापा नगर के प्रतिष्ठित डॉक्टर डॉ. प्रमोद मित्तल आसीन थे। जब हमारी दौड़ का परिणाम घोषित किया गया तो मेरे साथ मेरी मां और पापा भी स्तब्ध रह गये थे। प्रथम पुरस्कार अतुल मित्तल। इसके बाद क्या हुआ मुझे याद नहीं। यंत्रचालित सा द्वितीय पुरस्कार मैंने ग्रहण किया था। 'पांडे सर' की ओर मेरी नजरें उनसे कुछ पूछ रही थी। मानों कह रही हों 'क्यों सर? ऐसा क्यो? आपने ऐसा क्यों किया?

आज तक वह घाव मुझे पीड़ा देता है। पता नहीं कब तक इस वेदना को सहना होगा।

प्रसारण अधिकारी
आकाशवाणी जलगांव
पिन - 425001

ग्रामीण विकास और महिला ...

(पृष्ठ 8 का शेष)

करने लगी हैं। कई जिलों में साक्षर महिलाओं ने मजदूरों को न्यूनतम वेतन दिलाने, महिलाओं द्वारा बनाए गए सामान की बिक्री की सहकारी व्यवस्था करने, पेड़ों को कटने से बचाने और यहां तक कि शराब की दुकानें बंद कराने जैसे कार्यक्रम भी चलाए हैं।

सामाजिक वरदान

इस साक्षरता अभियान को जारी रखना अत्यंत आवश्यक है क्योंकि ग्रामीण महिलाओं की साक्षरता केवल उनके लिए नहीं बल्कि समूचे समाज के लिए वरदान है। उनके पढ़ लिख जाने से जनसंख्या वृद्धि, बाल विवाह, मृत्यु दर की अधिकता, स्वास्थ्य एवं स्वच्छता का अभाव जैसी अनेक समस्याएं स्वतः ही हल हो जायेंगी। यही नहीं, इससे पुरुषों के दृष्टिकोण में भी धीरे-धीरे परिवर्तन होगा और लड़की को कमजोर मानने तथा उनके विकास की उपेक्षा करने की परम्परागत प्रवृति में बदलाव आयेगा। जिन देशों में महिला साक्षरता की दर ऊची हैं, वहां ऊपर बताई गयी समस्याएं उसी अनुपात में कम हैं। हमारे अपने देश में भी जिन राज्यों में या जिन जिलों में साक्षरता, विशेषकर महिला साक्षरता की दर ऊंची है, वहां सामाजिक समस्याओं का प्रकोप कम है। केरल राज्य इस दृष्टि से नमूने के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। वहां महिला साक्षरता की दर देश में सबसे अधिक 86.9 प्रतिशत है, तो जनसंख्या वृद्धि दर केवल 1.34 प्रतिशत और बाल मृत्यु दर 1.7 प्रतिशत है। देश में कन्या विवाह की औसत आयु 18.3 वर्ष है जबकि केरल में 21.8 वर्ष है। इसके विपरीत उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, राजस्थान जैसे राज्यों में साक्षरता दर कम है और जनसंख्या वृद्धि और बाल मृत्यु दर अधिक तथा लड़कियों के विवाह की आयु राष्ट्रीय औसत आयु से काफी कम है। अतः ग्रामीण महिलाओं को शिक्षित करना न केवल ग्रामीण विकास की बल्कि समूचे देश में सामाजिक आर्थिक विकास की अनिवार्य शर्त है। यह ऐसा पेड़ है जो एक साथ कई फल देता है।

1370, सेक्टर-12,
आर० के० पुरम,
नई दिल्ली

देश का पहला संपूर्ण साक्षर जनजाति जिला

अशोक कुमार यादव

राजस्थान के दक्षिणी भूभाग पर स्थित आदिवासी जनसंख्या बहुल डूंगरपुर जिले ने अंततः संपूर्ण साक्षरता के लक्ष्य को चुनौती के रूप में ही स्वीकार नहीं किया बल्कि इसे अर्जित कर पूरे देश को यह दिखा दिया कि आदिवासी जनसंख्या बहुल, पिछड़ा और प्रतिकूल भौगोलिक परिस्थितियों वाला जिला भी संपूर्ण साक्षर हो सकता है। यह भी उल्लेखनीय बात है कि राजस्थान का डूंगरपुर जिला देश का पहला जनजाति बहुल जिला है जिसने कि सर्वप्रथम संपूर्ण साक्षर होने का गौरव प्राप्त किया है।

दुर्गम पहाड़ी क्षेत्रों और प्रकीर्ण बस्तियों में जनजाति बहुल डूंगरपुर जिले के निरक्षरों विशिष्ट भौगोलिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को पाटना भी संपूर्ण साक्षरता के लक्ष्य की प्राप्ति में साहसिक एवं चुनौती भरा कार्य था। जिले की विषम परिस्थितियों को देखते हुए साक्षरता को जन आंदोलन का स्वरूप देना और अनेक बाधाओं के बीच संपूर्ण साक्षरता आंदोलन का लक्ष्य अर्जित करना एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

17 सितम्बर, 1991 को 'संकल्प दिवस' के रूप में समूचे डूंगरपूर जिले में की गयी संपूर्ण साक्षरता आंदोलन की शुरूआत रंग लाई। राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन में शिक्षा के लिए डूंगरपूर जिले के रास्तापाल गांव में अपने प्राणों को न्यौछावर करने वाले नाना भाई खांट एवं आदिवासी बालाकालीबाई के शहादत के प्रेरणा प्रसंगों एवं डूंगरपुर जिले में ज्ञान और भक्ति की ज्योति जलाने वाले संत भावजी महाराज, गोविंद गुरु एवं संत सुरमाल दास की वाणियों ने भी जादू का सा कार्य किया और साक्षरता की रेल चल पड़ी जिसमें निरक्षर जुड़ते ही चले गये।

वातावरण निर्माण के प्रथम चरण में किये गये सर्वेक्षण से पता चला कि जिले में राष्ट्रीय साक्षरता मिशन के निर्देशों के अनुरूप 6 से 40 वर्ष तक की आयु के 2 लाख 83 हजार 801 निरक्षरों को साक्षर किया जाना था। इसके लिए तय किये गये योजनाबद्ध, व्यापक एवं सुदृढ़ कार्यक्रम के अनुसार जिले में निरक्षर 6 से 14 वर्ष तक के 78 हजार 742 बालक - बालिकाओं को औपचारिक एवं अनौपचारिक शिक्षा माध्यमों से शिक्षित कराने का प्रयास करना था। इसी प्रकार से 14 से 40 वर्ष की आयु वर्ग में 2 लाख 5 हजार 59 निरक्षरों को आखर कक्षाओं के माध्यम से साक्षर बनाना था।

इस प्रकार से निरक्षरों को साक्षर बनाने के लिए जिले में 12 हजार आखर कक्षाओं का गठन कर 15 हजार स्वयंसेवकों को आखर दूत के रूप में प्रेरित एवं प्रशिक्षित कर 1: 10 के अनुपात में निरक्षरों को साक्षर करने का दायित्व सौंपा गया।

लगभग 6 माह तक वातावरण निर्माण का प्रथम चरण संपूर्ण साक्षरता के लक्ष्यों को प्राप्त करने में सर्वाधिक सहायक सिद्ध हुआ। साक्षरता आंदोलन के लिए अनुकूल वातावरण निर्मित करने के लिए जिले में ग्राम पंचायतों एवं नगर वार्डों के लोगों को साक्षर करने के लिए आखर सेनानियों को सम्मान देने हेतु पट्टा वितरण समारोहों का आयोजन किया गया। आखर पद यात्राओं का आयोजन कर घर-घर संपर्क, नारे लेखन, आखर कक्षाओं का गठन, स्वयंसेवकों का चयन, स्वच्छ पेयजल, टीकाकरण एवं अन्य अभिप्रेरणा कार्य किए गए। पंचायत स्तर पर आखर मेलों का आयोजन आखर रथों के माध्यम से आखर सामग्री का समारोह-पूर्वक वितरण, सांस्कृतिक जत्थों का गठन एवं उनका सतत भ्रमण, महिला साक्षरता सम्मेलनों का आयोजन, विभिन्न स्तरों पर आखर संगोष्ठियों के आयोजन, आखर चेतना यात्रा, आखर साईकल रैली, आखर तीरन्दाजी प्रतियोगिता आदि के माध्यम से साक्षरता आंदोलन को गतिप्रदान करने में अभूवपूर्व बल मिला।

इस तरह अनुकूल वातावरण निर्मित होने के बाद एक मार्च 92 को नानाभाई खाट व कालीबाई की शहादत को ताजा करने की दृष्टि से रास्तापाल गांव में जिला स्तरीय आखर कक्षा के शुभारंभ समारोह का आयोजन कर निरक्षरता के खिलाफ जंग छेड़ी गई। इसके बाद तो पूरे जिले में निरक्षरों को साक्षर बनाने के लिए युद्धस्तर पर साक्षरता कक्षाओं का संचालन शुरू हो गया। इस अभियान को जन आंदोलन का स्वरूप प्रदान करने के लिए जिले के सभी वर्गों, सभी विभागों, अधिकारियों, कर्मचारियों, जन प्रतिनिधियों समाज सेवियों, स्वयंसेवी संस्थाओं, अध्यापकों, विद्यार्थि ों आदि को जोड़ा गया।

यही नहीं संपूर्ण साक्षरता आंदोलन को बारह हजार आखर कक्षाओं के पर्यवेक्षण, मोनिटरिंग, आंतरिक मूल्यांकन कार्य हेतु ग्रामपंचायत स्तरीय समस्त राज्य कर्मचारियों और शिक्षकों को जोड़ा गया। प्रति सप्ताह ग्राम, ग्राम पंचायत, पंचायत समिति एवं जिला स्तरीय साप्ताहिक समीक्षात्मक बैठकों के माध्यम से नियमित रूप से संपूर्ण साक्षरता आंदोलन की प्रगति का जायजा लिया गया एवं समस्याओं के स्थानीय समाधान उपलब्ध कराये गये।

संपूर्ण साक्षरता के लिए जिले में साक्षरता कक्षाओं के दो शैक्षिक सत्र आयोजित किये गये। इनमें राष्ट्रीय साक्षरता मिशन के निर्देशानुसार जिला साक्षरता समिति द्वारा तीन आखर चोपड़ी एवं शिक्षण सामग्री मुफ्त में उपलब्ध करायी गयी। उल्लेखनीय है कि आखर चोपड़ी भाग एक व दो तो निरक्षरों को स्थानीय भाषा में ही तथा आखर चोपड़ी भाग 3 हिंदी भाषा में दी गयी। इस प्रकार से मातृभाषा से राष्ट्र भाषा की ओर नव साक्षरों को लाने का अनूठा प्रयास एवं सफलतम प्रयोग साक्षरता आंदोलन के माध्यम से हुआ। इसके साथ ही वर्ष 1991-92 एवं वर्ष 1992-93 के शैक्षिक सत्रों में आये ग्रीष्मावकाशों के दौरान इस आंदोलन में शिक्षकों की पूर्णकालीन सेवाएं ली गयीं।

डूंगरपुर जिले के संपूर्ण साक्षरता आंदोलन की विशेषता यह भी रही कि निरक्षरों के लिए तैयार की गयी तीनों आखर चोपड़ियों की पढ़ाई लिखाई, वाचन, गिनती आदि का समय-समय पर मूल्यांकन स्थानीय स्तर पर भी कराया गया। प्रथम आखर चोपड़ी का अध्ययन पूर्ण करने पर नव साक्षरों की जांच परीक्षा ली गयी व उत्तीर्ण हुए नव साक्षरों को इसी क्रम में तीनों चोपड़ियों का अध्ययन कार्य पूर्ण कराया गया।

आखर दूतों एवं आखर सैनानियों सहित साक्षरता आंदोलन से जुड़े लोगों की मेहनत रंग लायी। राष्ट्रीय साक्षरता मिशन द्वारा मनोनीत तीन सदस्यीय बाह्य मूल्यांकन दल ने जून 1993 के अंतिम व जुलाई 1993 के प्रथम सप्ताह में स्थानीय मूल्यांकन कर्त्ताओं के सहयोग से चयनित 21 ग्रामों में साक्षरता कक्षाओं से जोड़े गये समस्त नवसाक्षरों का मूल्यांकन किया गया और डूंगरपुर जिला विभिन्न चरणों को पूर्ण करता हुआ संपूर्ण साक्षर हो गया।

राष्ट्रीय साक्षरता मिशन के द्वारा निर्धारित मानदंड के अनुसार 80 प्रतिशत निरक्षरों को साक्षर बना लेने वाले जिले को संपूर्ण साक्षर घोषित कर दिया जाता है। डूंगरपुर जिले में लक्ष्यानुसार निर्धारित संपूर्ण साक्षरता परियोजना अवधि में सतत मूल्यांकन कार्यक्रमों को आयोजित कर 6 से 14 वर्ष तक की आयु के 17 हजार 763 निरक्षर बालक - बालिकाओं को विद्यालयों एवं अनौपचारिक शिक्षा केंद्रों में प्रवेश कराया गया। इसके साथ ही जिले में 12 हजार साक्षरता कक्षाओं के माध्यम से 14 से 40 वर्ष तक के एक लाख 99 हजार निरक्षरों को साक्षर बनाया गया। इस प्रकार जिले में 6 से 40 वर्ष तक के 91.9 प्रतिशत निरक्षरों को साक्षर बनाकर राष्ट्रीय साक्षरता मिशन के निर्धारित मानदंड से 11.9 प्रतिशत अधिक उपलब्धि अर्जित कर ली गयी।

संपूर्ण साक्षरता के निर्धारित मानदंडों से भी अधिक उपलब्धि अर्जित कर लिये जाने के बावजूद जिले में 2 हजार 249 नेत्रहीन, मूक एवं विकलांग निरक्षरों को छोड़कर 54 हजार 476 निरक्षर और रह गये जो वर्ष में आठ माह से अधिक समय तक रोजगार हेतु पलायन करने एवं परिस्थितिवश साक्षरता कक्षाओं से नहीं जुड़ पाये। अब इन बाकी निरक्षरों को उत्तर साक्षरता कार्यक्रम में साक्षर करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है।

उल्लेखनीय है कि बाह्य मूल्यांकन दल द्वारा किये गये डूंगरपुर जिले के संपूर्ण साक्षरता आंदोलन के मूल्यांकन में संपूर्ण जिले के एक लाख 64 हजार नव-साक्षरों का गुणात्मक एवं संख्यात्मक दृष्टि से शैक्षिक स्तर 'अ' श्रेणी का रहा है। बाह्य मूल्यांकन दल द्वारा भी जिले के संपूर्ण साक्षरता आंदोलन की भूरि-भूरि प्रशंसा की गयी है। राजस्थान में संपूर्ण साक्षर होने वाला डूंगरपूर जिला अजमेर के बाद दूसरा है।

संपूर्ण साक्षरता आंदोलन तो समाप्त हो गया है पर दो वर्ष बाद यह आंदोलन जिले में अनेक परिवर्तन छोड़ गया है। संपूर्ण साक्षरता आंदोलन के फलस्वरूप जिले में गत दो वर्षों में स्कूलों में बालकों के नामांकन में 9 प्रतिशत तथा बालिकाओं के नामाकंन में 18 प्रतिशत वृद्धि हुई है। इसके साथ ही पुरूष व महिला नसबंदी आपरेशनों में 40 प्रतिशतं वृद्धि हो गयी है। परिवार कल्याण के अस्थाई साधनों को भी स्वेच्छा से अपनाने वाले 60 प्रतिशत दम्पत्ति बढ़ गये हैं। विकास योजनाओं के प्रति भी नव-साक्षरों का रुझान बढ़ा है। सबसे उल्लेखनीय बात यह है कि जिले में साक्षरता आंदोलन के कारण 90 प्रतिशत बच्चे टीकाकरण के दायरे में आ गये हैं।

दूसरी तरफ साक्षरता के प्रसार से आदिवासियों एवं पिछड़े वर्गों में शराब पीने की लत पर बहुत हद तक पाबंदी लगी है। बाल विवाहों की रोकथाम हुई है। अब गुजरात में रहकर रोजगार पर लगे आदिवासियों एवं मजदूरों की पत्नियां अपने पतियों को पत्र लिखने लगी हैं। साक्षरता का असर यह हुआ है कि अब जिले में प्राथमिक विद्यालयों को खुलवाने की मांगे बढ़ी है। यही नहीं साक्षरता के कारण महिलाएं भी अपने अधिकारों को समझकर हर

क्षेत्र में आगे आने लगी हैं।

पिछली 10 जुलाई 1993 को डूंगरपुर में संपूर्ण साक्षरता आंदोलन का लक्ष्य अर्जित करने के उपलक्ष्य में एक समारोह का आयोजन किया गया। राजस्थान के राज्यपाल, श्री बलिराम भगत ने इस समारोह में मुख्य अतिथि पद से डूंगरपुर जिले के संपूर्ण साक्षरता आंदोलन की सराहना करते हुए साक्षरता कार्यक्रम में श्रेष्ठ कार्य करने वाले आखर दूतों, आखर सेनानियों, पर्यवेक्षकों, आखर कमांडरों सहित 25 जनों को प्रशंसा पत्र एवं मेडल वितरित किये।

साक्षरता कार्यक्रम की सफलता को देखते हुए और नव-साक्षरों की साक्षरता को बरकरार बनाये रखने की दृष्टि से जिला साक्षरता समिति ने डूंगरपुर जिले के लिए दो वर्षीय उत्तर साक्षरता परियोजना राष्ट्रीय साक्षरता मिशन को भिजवायी है। इसकी स्वीकृति मिलने पर तीन करोड़ 85 लाख रुपये व्यय किये जायेंगे। इसके तहत जिले में 870 साक्षरता केंद्र चलाये जायेंगे। उल्लेखनीय है कि उत्तर साक्षरता कार्यक्रम के लिए जिले में 750 गांवों में साक्षरता केंद्रों के भवन जवाहर रोजगार योजना में निर्मित कराये जा चुके हैं। शेष 106 गांवों में साक्षरता केंद्रों के भवन बनाये जा रहे हैं। उत्तर साक्षरता केंद्रों में साक्षरता कक्षाएं लगेंगी, नव-साक्षरों को व्यावसायिक प्रशिक्षण दिया जायेगा, विकास सम्बन्धी सूचनाओं का आदान-प्रदान होगा व दूरदर्शन सेट, पुस्तकालय, वाचनालय एवं सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र की सुविधाएं उपलब्ध कराई जायेंगी।

संपूर्ण साक्षरता कार्यक्रम का लक्ष्य अर्जित कर लेने के बाद डूंगरपुर के जिला प्रशासन ने जिले में 6 से 14 वर्ष तक के सभी बालक-बालिकाओं को स्कूलों में निश्चित अवधि में दाखिला दिला देने का कार्यक्रम निर्धारित किया है। नव-साक्षरों को परिचय के लिए पहचान पत्र दिये जा रहे हैं ताकि इनकी समस्याओं का समाधान प्राथमिकता से हो सके। राष्ट्रीय साक्षरता मिशन के निर्धारित मानदंड के अनुरूप तो डूंगरपुर जिले ने लक्ष्य प्राप्त कर लिया है पर अब जिला शत प्रतिशत साक्षरता की तरफ कदम बढ़ा रहा है।

जिला सूचना एवं जन संपर्क अधिकारी
डूंगरपुर (राज०) 314001

लघु कथा

वफादारी

मुकेश रावल

सेठ का पुराना नौकर कई महीनों से बीमार था। अतः सेठ ने एक नया नौकर रख लिया था।

सेठ का एक वफादार कुत्ता भी कई दिनों से बीमार था। उसका रिरियाना सेठ से सहा नहीं जाता था।

एक दिन सेठ ने नये नौकर से कहा — "हरिया को मार देना। मुझसे उसका दुःख देखा नहीं जाता।"

नौकर ने तुरंत ही सेठ की आज्ञा का पालन किया। 'अरे दुष्ट! तूने मेरे वफादार नौकर हरिया को मार दिया' — सेठ चिल्लाया।

'मुझे नहीं मालूम था कि कुत्ते का नाम भी हरिया है — दयनीय स्वर में नौकर ने कहा।

तभी सेठ ने देखा — नौकर हरिया की लाश के पास हरिया कुत्ता भी मरा हुआ था!!

4-राधाकृष्ण नगर,
अक्षर फार्म के पास,
विद्यानगर रोड - आणंद
जिला - खेड़ा, (गुजरात)
पिन - 388001

भारत के विकास में महिलाओं की भूमिका

(प्रधानमंत्री का भाषण)

"भारत के विकास में महिलाओं की भूमिका" विषय पर वार्षिक विज्ञान प्रदर्शनी का उद्घाटन करते हुए प्रधानमंत्री श्री पी. वी. नरसिम्ह राव ने अपने भाषण में कहा :

"यत्र नार्यन्तु पूज्यन्ते
रमंते तत्र देवता"

" यह पंक्ति लिखने वाला कोई कट्टर पुरुषों का पक्षधर रहा होगा क्योंकि इसको लिखकर लगता है कि हमने नारी को पूजने योग्य बना दिया। जैसे कि हम सभी देवी देवताओं की पूजा करते हैं और उसके बाद उनको उनके हाल पर इस प्रकार छोड़ देते हैं कि जैसे उनका समाज से कुछ लेना देना ही नहीं, वैसे ही पता नहीं कितनी सदियों पूर्व किसी के द्वारा अभिव्यक्त इस महान विचार के परिणामस्वरूप हुआ है।

महिला को जो चाहिए और जिसकी वह वास्तव में पात्र है, वह है समान व्यवहार'। इससे अधिक अथवा कम कुछ भी नहीं। उन सभी विशेष परिस्थितियों को जिन्हें उसे झेलना पड़ता है, इसमें कुछ पुरुषों की बनायी हैं, कुछ महिलाओं की और कुछ इतिहास की बनायी हुई हैं तथा कुछ शारीरिक रचना के कारण हैं जिन पर किसी का बस नहीं है। इन सभी कारणों की बड़ी गंभीरता से और दत्तचित्त होकर समीक्षा करनी होगी ताकि हम समाज में स्त्री और पुरुषों की ऐसी समानता स्थापित कर सकें जिसको हम वास्तविक मानते हैं। इस समस्या का समाधान दुनिया में सदियों से नहीं निकल पाया है। अगर भारत में हम इसका समाधान नहीं खोज पाये तो इसमें अचरज की कोई बात नहीं है। लेकिन इसके लिये दृढ़ संकल्प के साथ प्रयास करना होगा क्योंकि इसके बिना हमारे विकास की प्रक्रिया बहुत उल्टी-सीधी हो जायेगी। यह उल्टी-सीधी हो भी चुकी है। अब समय है कि हम इस अस्वीकार्य परिस्थिति में सुधार के प्रयास करें।

"भारत के विकास में महिलाओं की भूमिका" पर आज इस प्रदर्शनी का उद्घाटन करने पर मुझे बहुत प्रसन्नता है। पंडित जवाहरलाल नेहरू के जन्म दिवस पर 'भारत के विकास में महिलाओं की भूमिका' विषय पर विज्ञान प्रदर्शनी के आयोजन से आधुनिक भारत के निर्माण में उनके योगदान की एक सराहनीय समग्र झलक मिलती है। उनके प्रति यह सच्ची श्रद्धांजलि है और भारत की महिलाओं का सही अभिनंदन है।

हमने आर्थिक विकास और सामाजिक प्रगति में काफी उपलब्धियां प्राप्त की हैं। हमारे देश में विशेषकर स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से इस सदी में समाज में जो मौन क्रांति हुई है उसमें महिलाओं की भूमिका को सर्वत्र मान्यता और प्रशंसा मिली है। कानून की दृष्टि से महिलाओं को समानता का दर्जा मिला है और उन्होंने प्रत्येक क्षेत्र में अपनी धाक जमायी है।

सामाजिक-वैज्ञानिक व्यापक स्तर पर इस मान्यता को स्वीकार करते हैं कि समस्त विकास अभिन्न रूप से महिलाओं के विकास और समाज में उनके स्थान से जुड़ा है। वे परंपराओं की रक्षा करती हैं तो परिवर्तन की भी सूत्रधार हैं। बच्चों को वे उनकी शैशवास्था से ही संस्कार देती हैं। इसी प्रकार धरोहर की रक्षा होती है और समय के साथ होने वाले परिवर्तन उसमें आत्मसात होते रहते हैं।

हमारा पराभव भी महिलाओं की महत्ता के पराभव के साथ ही हुआ। पंडित जी ने 1945 में अखिल भारतीय महिला सम्मेलन को अपने संदेश में कहा था - 'अपनी शिखर की प्रतिष्ठा से भारत के पतन का कारण कम से कम आंशिक रूप से भारत में महिलाओं की स्थिति और प्रतिष्ठा में गिरावट है।' इस प्रकार महिलाओं की स्थिति किसी भी समाज की परिपक्वता और विकास का महत्वपूर्ण नियामक है।

पंडित जी महिलाओं की मुक्ति के लिये आंदोलन को आगे बढ़ाने को बहुत महत्व देते थे और इसको महात्मा गांधी ने बहुत गति प्रदान की। उनकी कल्पना थी कि स्वाधीनता आंदोलन में महिलाओं की भागीदारी होनी चाहिए क्योंकि इस प्रकार की भागीदारी उनके स्तर को ऊंचा करेगी और उनके लिये प्रगति के अवसर बढ़ायेगी। अखिल भारतीय महिला सम्मेलन को अपने उसी संदेश में उन्होंने आगे कहा कि "उनके सामने आगे आने वाले समय में महिला होने के कारण कानूनी, सामाजिक और दूसरी अक्षमताओं से छुटकारा पाने की चुनौती है ताकि वे स्वतंत्र भारत के निर्माण में पुरुषों के बराबर भूमिका निभा सकें।'

आधी शताब्दी के बाद भारत में महिलाओं की स्थिति में नाटकीय परिवर्तन हुए। उन्होंने केवल अपना ही विकास नहीं किया बल्कि देश के विकास की प्रक्रिया को गति देने में योगदान दिया। उन्होंने सिद्ध कर दिया है कि हमारे देश की नियति के निर्माण में

उनकी भी बराबर की भागीदारी है। ग्रामीण क्षेत्रों में तो उन्होंने सदैव अर्थव्यवस्था में उल्लेखनीय योगदान किया है। शहरों में अभी इस बात का पूरी तरह आभास नहीं है कि ग्रामीण समाज में महिला की आर्थिक शक्ति कितनी है। जो इच्छुक हैं उनके लिये यह अध्ययन का बड़ा अच्छा विषय है। यद्यपि यह सब जगह और सभी समुदायों में नहीं है। समाज के उस वर्ग में जहां पुरुष ही कमाता और कमाई घर लाता है तथा महिला घर में रहती है, बच्चों का लालन-पालन करती है यह समाज की उत्पादकता का एक अलग पहलू है। यह समाज का एक पक्ष है। दूसरा पक्ष जैसा मैंने कहा यह है कि महिला खेत में काम करने जाती है, खेती-बाड़ी का सारा काम-काज देखती है जबकि पुरुष कहीं बैठा धूम्रपान अथवा मद्यपान करता है। मेरा आशय यह है कि यह कटु यथार्थ है। जिनकी पृष्ठभूमि गाव की है उनको यह पता है। तब ऐसा नहीं है कि हम कोई नया काम कर रहे हैं। यह समाज में चलता आया है। जहां महिला का नियंत्रण आर्थिक गतिविधियों पर होता है वहां उसके पास वास्तविक शक्ति होती है। जहां ऐसा नहीं होता वहा वह केवल रसोई और बच्चों तक ही सिमट कर महत्वहीन हो जाती है। तार्किक रूप से भी यही होना है।

लेकिन मुझे भली-भांति पता है कि हमारी अब तक की उपलब्धियों के बावजूद अभी बहुत कुछ करना शेष है। महिलाओं की स्थिति अभी संतोषजनक नहीं है। पिछले कुछ समय में अनेक सरकारी नीतियां और कार्यक्रम इस उद्देश्य से बने हैं कि देश के विकास में महिलाओं के योगदान की परिधि और व्यापक हो। महिलाओं की स्थिति में सुधार के लिए जो नीतियां बनी हैं, उनमें कार्यक्रम भी हैं और उनमें सामाजिक चेतना जागृत करने के उपाय भी हैं।

एक तीन आयामी कार्यनीति अपनायी जा रही है : महिलाओं की आर्थिक स्थिति में सुधार, उनको सहायता देने के लिये सेवाओं का विस्तार, चेतना के स्तर में सुधार और समाज एवं प्रशासनिक तंत्र को इसके प्रति और जागरूक बनाना। स्वतंत्रता के बाद की अवधि में महिलाओं के लिये सरकार की विकास नीतियों और कार्यक्रमों के निर्माण में नेहरू जी की कल्पना ने ही मार्गदर्शन किया है। महिलाओं को हमारे समाज में राष्ट्रीय, सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक क्षेत्र में बराबर के योगदान की वास्तविक शक्ति देने के उद्देश्य से हमने अपने कार्यक्रमों को निरंतर आगे बढ़ाया है तथा गतिशील विकास की प्रक्रिया को प्रारंभिक कल्याणोन्मुखता दी है।

हाल ही में सरकार ने महिलाओं के सामाजिक स्तर में सुधार लाने उन्हें आर्थिक स्वतंत्रता देने और राजनैतिक प्रतिनिधित्व देने के कई नये कदम उठाये हैं। पिछले महीने प्रारंभ हुई महिला समृद्धि योजना, राष्ट्रीय महिला आयोग और राष्ट्रीय महिला कोष इनमें कुछ उल्लेखनीय कदम हैं। ग्रामीण महिलाएं महिला समृद्धि योजना के प्रति बड़ा उत्साह दिखा रही हैं। मैं इस उत्साह से अभिभूत हूं। मुझे तो यह भी शक होता है कि कहीं इसके पीछे भी पुरुषों का हाथ तो नहीं है। इस पर मैं थोड़ा विस्तार से चर्चा करना चाहूंगा क्योंकि लाखों की संख्या में डाकघरों में बचत खाते खुल रहे हैं। देखने में यह परिणाम बड़े अच्छे लगते हैं लेकिन पैसे की यह बचत उस लाभ का केवल एक हिस्सा है जिसे पहुंचाने का आशय है। वास्तविक लाभ तो वह आर्थिक आत्मनिर्भरता है कि जो महिला को अपना स्वतंत्र बचत खाता खोलकर मिलती है। किसी त्योरी चढ़ाने वाले नागरिक को यह आम बात लगेगी। खाता खोलने में कौन-सी बड़ी बात है, कोई भी खोल सकता है। हा, शहर में ऐसा ही लगता है क्योंकि वहां खाता खोलना आम बात है। लेकिन जो लोग दूसरे पर निर्भर व्यक्ति की मानसिकता समझते हैं वे उस अनपढ़ ग्रामीण महिला के चेहरे की चमक को आसानी से समझ सकते हैं जो इस अनुभूति से आती है कि वह अपने आप में एक स्वतंत्र आर्थिक हस्ती हो गयी है। मुझे विश्वास है कि यह छोटा-सा कदम भारत की आधी आबादी के दृष्टिकोण में जमीन आसमान का अंतर ला सकता है।

दूसरा उल्लेखनीय कदम है 73वां संविधान संशोधन जिसके द्वारा पंचायती राज संस्थाओं में हर स्तर पर महिलाओं के लिये एक तिहाई स्थान आरक्षित हैं। इस संशोधन से जन सामान्य के स्तर पर नेतृत्व देने वाली महिलाओं का एक विशाल वर्ग उत्पन्न होगा। यह संख्या लाखों से भी ऊपर पहुंचेगी। इस प्रकार जन सामान्य के स्तर पर नेतृत्व देने वाली महिलाओं की यह विशाल संख्या परिवर्तन लाने में शक्तिशाली भूमिका निभायेगी। हमें यह सुनिश्चित करना होगा कि उनको इन संस्थाओं में काम करने का समुचित प्रशिक्षण मिले और उनको अपने अधिकारों और कर्त्तव्यों का पूरा ज्ञान हो। मुझे विश्वास है कि इन उपायों से महिलाओं को घर की चारदीवारी से बाहर निकलकर सार्वजनिक जीवन में और सार्थक भूमिका का अवसर मिलेगा।

लेकिन सरकार की भूमिका में समाज को पूरक की भूमिका निभानी होगी। भारतीय महिला के प्रति सामाजिक दृष्टिकोण और सामाजिक दायित्वों के बोध में परिवर्तन लाने की महान चुनौती हमारे सामने है। सरकार तो महिलाओं के विकास और उनकी समस्याओं के प्रति जागरूक और उत्तरदायी रहेगी लेकिन उसी के अनुरूप सामाजिक दृष्टिकोण को भी बदलना होगा और उसको

नयी दिशा देनी होगी। इस दिशा में इष्टतम प्रगति के लिये सरकारी क्षेत्र, शिक्षा जगत और गैर सरकारी संगठनों के प्रयासों में अच्छा तालमेल होना चाहिए।

इन सबसे भी अधिक महत्वपूर्ण यह है कि समाज सुधार के लिये स्वतंत्र रूप से तथा राजनैतिक और अन्य संस्थाओं के कार्यक्रमों के अंग के रूप में व्यापक प्रयास हों। महिलाओं को शक्ति देने और उनकी मुक्ति के लिये कानूनों की बाढ़-सी आई हुई है। लेकिन इन कानूनों को लागू करने के लिये उपयुक्त समाज सुधार नहीं हुआ है। इन सुधारों के लिये केवल संस्थाओं का ही सहयोग काफी नहीं है बल्कि इन कानूनों को वास्तव में लागू करने के लिए समाज की स्वीकृति भी आवश्यक है। उदाहरण के लिये "सती प्रथा" को ले लीजिये। हमें उन लोगों से कड़ा संघर्ष करना पड़ा जो या तो ध्यान दूसरी ओर मोड़ना चाहते थे अथवा कानून को शिथिल करना चाहते थे। यह संघर्ष बड़ा उग्र था। राजीव जी ने इसका नेतृत्व किया और अंततः हमारी जीत हुई। महिलाओं का पक्ष सही सिद्ध हुआ और बात वहीं खत्म हो गयी।

उसके बाद मुझे पता नहीं है कि इस पर आगे कोई कार्यवाही हुई जिससे कि कोई समाज सुधार हो और कानून को सामाज़िक स्वीकृति उन क्षेत्रों में मिले जहां यह प्रथा अभी है। मेरा आशय यह है कि मैं निश्चित रूप से यह नहीं कह सकता कि इसको जनता का समर्थन अथवा स्वीकृति मिल चुकी है। यह कोई श्रेयस्कर बात नहीं है कि संसद कानून बनाती रहे और उनका उल्लंघन होता रहे। इस कमी को शीघ्र दूर करना होगा। आप को याद होगा कि इस शताब्दी के पहले पच्चीस वर्ष में महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश और भारत के दक्षिणी एवं उत्तरी भागों में समाज सुधार का काम हुआ था। वास्तव में यह काम पिछली शताब्दी में राजा राममोहन राय, स्वामी विवेकानंद, खांडूरकर, बी. एस. निगम एवं अन्य लोगों ने शुरू किया था।

आज हमारे बीच ऐसे समाज सुधारक क्यों नहीं हैं? वे बड़ी सीमा तक एक राजनैतिक संघर्ष को समर्थन देते थे। वास्तव में कुछ लोगों का तो विचार यह था कि जब तक हमारा सामाजिक सुधार पूरा नहीं होता हम कुछ भी राजनैतिक परिवर्तन कर लें वे विकृत हो जायेंगे। शायद उनसे कुछ परिणाम मिलें लेकिन वे उल्टे-सीधे होंगे। कुछ हद तक ऐसा ही हुआ भी है। अतः राजनैतिक परिवर्तन के अनुरूप ही सामाजिक सुधार भी हों ताकि समाज उन परिवर्तनों को पचा सके, जो आप ला रहे हैं। यह स्पष्ट है कि दोनों का साथ चलना आवश्यक है।

अतः मेरे विचार से समाज में जो कुछ हो रहा है और समाज में व्याप्त, त्रुटियों और अनियमितताओं को समाप्त करने के लिये यह प्रयास साथ-साथ होना चाहिए और प्रत्येक राजनैतिक पार्टी के अथवा संगठन के कार्यक्रम का यह अंग होना चाहिए। मैंने भी अनेक बार कहा है तथा और लोगों ने भी कहा है लेकिन हमारी पार्टियों ने यह कार्यक्रम शुरू नहीं किया। संभवतया यदि राजनैतिक दल पहल करें तो दूसरे भी इसका अनुसरण करेंगे और तब राजनैतिक स्तर पर, समाज के स्तर पर तथा विधायिका के स्तर पर ऐसे परिवर्तन लाने के प्रयासों में समन्वय होगा जो सभी पक्ष लाना चाहते हैं।

साभार : पत्र सूचना कार्यालय

'कुरुक्षेत्र' परिवार की ओर से पाठकों को नव-वर्ष की शुभकामनाएं।

दूरस्थ शिक्षा : सार्थकता का सवाल

✍ सत्यभान यादव

कुछ समय पूर्व तक भारत में दूरस्थ शिक्षा जैसी अनौपचारिक शिक्षा प्रणाली को एक स्वप्न के रूप में देखा जाता था चूंकि इस तरह की शिक्षा पद्धति को भारत जैसे विकासशील देश में लागू करना अनेक अनिश्चितताओं एवं कठिनाइयों से भरा मार्ग चुनना था। बहुआयामी भारतीय समाज में अशिक्षा का बोलबाला था। दूरस्थ शिक्षा का प्रबंध करने वाली संस्था अर्थात् खुले-विश्वविद्यालय की स्थापना के समय हमारे देश की मात्र 35 प्रतिशत जनता साक्षर थी। ऐसी अल्प साक्षर अवस्था में खुले विश्वविद्यालय की अवधारणा को जन्म देना न केवल चुनौतीपूर्ण कार्य था बल्कि साहसिक ऐतिहासिक पहल भी थी।

खुला विश्वविद्यालय शिक्षा प्रबंध के क्षेत्र में एक अभिनव प्रयास है। विश्व स्तर पर इसका इतिहास कोई बहुत पुराना नहीं है। सर्वप्रथम ब्रिटेन में 1979 में खुले विश्वविद्यालय की स्थापना की गई थी। इसके उपरांत तो दुनिया के मानचित्र पर 20 से अधिक देशों में खुले विश्वविद्यालयों की स्थापना हो गई। भारत में सर्वप्रथम सन् 1982 में आंध्र प्रदेश में हैदराबाद में खुले विश्वविद्यालय की स्थापना की गई जिसके प्रथम उपकुलपति प्रो. जी. राम रेड्डी को नियुक्त किया गया। वर्तमान में यह विश्वविद्यालय राज्य के प्रत्येक जिले में अध्ययन केंद्र संचालित कर अध्यापन कार्य करवा रहा है। पहले दिल्ली में भी इस विश्वविद्यालय का केंद्र खोला गया था लेकिन इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की दिल्ली में स्थापना के साथ ही इस केंद्र को बंद कर दिया गया।

भारत में खुले विश्वविद्यालय की परिकल्पना 1970 में की गई थी, लेकिन किन्हीं कारणों से परिकल्पना को अंजाम नहीं दिया जा सका। फिर 1978 में आंध्रप्रदेश में ऐसे विश्वविद्यालय की स्थापना का प्रस्ताव किया गया, लेकिन इसकी स्थापना की बजाय उस्मानिया विश्वविद्यालय में इसी तरह का खुला महाविद्यालय स्थापित करके एक बार पुनः खुले विश्वविद्यालय की स्थापना होते-होते रह गई। अंततः अगस्त 1982 में उस चिर-प्रतीक्षित परिकल्पना को कार्यरूप देकर हैदराबाद में खुले विश्वविद्यालय की स्थापना कर दी गई।

उसके बाद विभिन्न राज्य सरकारें खुले विश्वविद्यालयों की स्थापना में रुचि लेती प्रतीत हो रही है। अगस्त 1985 में राज्यों के शिक्षा मंत्रियों की नई दिल्ली में आयोजित बैठक में यह निर्णय किया गया था कि प्रत्येक राज्य में कम से कम एक खुला विश्वविद्यालय अवश्य होना चाहिये। बैठक के निर्णयों की अनुपालना में राष्ट्रीय स्तर पर 1985 में इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की स्थापना की गई। तदोपरांत देखते-देखते पं० बंगाल, महाराष्ट्र, केरल, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्य प्रदेश, बिहार, हिमाचल प्रदेश तथा गुजरात आदि राज्यों में या तो विश्वविद्यालयों की स्थापना हो चुकी है या इन्हें स्थापित करने का प्रस्ताव है।

उच्च शिक्षा की बढ़ती लागत एवं सीमित संसाधनों को देखते हुए यह संभव नहीं है कि देश में सभी जगह उच्च शिक्षण संस्थाओं की स्थापना की जाये और भवन फर्नीचर आदि आधारभूत सुविधाएं उपलब्ध करवायी जाए तथा इतने अधिक स्थायी शिक्षकों की नियुक्ति की जा सके। दूसरी ओर उच्च शिक्षा प्राप्त करने के इच्छुक सभी शिक्षार्थियों को इन विश्वविद्यालयों में पढ़ने का सौभाग्य नहीं मिलता। अतः उच्च शिक्षा में उच्च स्तरों को बनाये रखने, इन उच्च शिक्षण संस्थाओं में सभी के प्रवेश को सुनिश्चित बनाने तथा सीमित संसाधनों का अधिकाधिक कुशलतम कार्यों में उपयोग करने के लिये ऐसे मुक्त विश्वविद्यालयों की स्थापना आवश्यक है। ये विश्वविद्यालय दूर-दराज क्षेत्र के विद्यार्थियों, गृहणियों तथा गरीब किंतु प्रतिभावान छात्रों को उनकी प्रतिभा का सही दिशा में प्रयोग करने की क्षमता प्रदान करने में सहायक होंगे।

खुले विश्वविद्यालय पूर्णतः एक स्वतंत्र किंतु स्वायत्तशासी संस्थायें होती हैं। ये विद्यार्थियों को उनकी रुचि एवं समय की उपलब्धता के अनुसार वैविध्य विषयों की पाठ्यसामग्री उपलब्ध करवाते हैं। शिक्षण पद्धति में छपी हुई पुस्तकों के साथ-साथ बहुआयामी सम्प्रेषण तकनीक को उपयोग में लाया जा रहा है। अन्य परंपरागत विश्वविद्यालयों की तरह इन विश्वविद्यालयों के शिक्षक भी दूरदराज के क्षेत्रों में रहने वाले विद्यार्थियों से शैक्षिक तारतम्य बनाकर शिक्षा के उच्च स्तर को बनाये रखने में अपना भरपूर सहयोग देते हैं। क्षेत्रीय अध्ययन केंद्रों के जरिये विद्यार्थियों को विभिन्न पाठ्यक्रमों की जानकारी दी जाती है तथा केंद्र से दूरस्थ विद्यार्थियों को संचार सुविधाओं जैसे टी. वी.,.समाचार पत्रों आदि से पाठ्यक्रमों की प्रकृति, प्रकार एवं परीक्षा संबंधी जानकारी उपलब्ध करवाते हैं। आजकल विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने छात्रों की सुविधा के लिये कार्यक्रमों का प्रसारण सप्ताह में छह

दिन कुल मिलाकर 12 घंटे इंसेट टी. वी. योजना के अंतर्गत शुरू कर रखा है। शुरू में इन कार्यक्रमों में विदेशी कार्यक्रम दिखाये जाते थे, लेकिन अब देश भर में स्थित यूजीसी के केंद्र 60 प्रतिशत कार्यक्रम स्वयं तैयार करके प्रसारित कर रहे हैं। जामिया मिलिया इस्लामिया, उस्मानिया विश्वविद्यालय, कामराज विश्वविद्यालय, रुड़की विश्वविद्यालय, और सेंट जेवियर विश्वविद्यालय, इन कार्यक्रमों को सफलतापूर्वक तैयार कर रहे हैं।

दूरस्थ शिक्षा के उद्देश्यों में संलग्न ये विश्वविद्यालय बहुआयामी तकनीकी व गैर तकनीकी वाले अनेक पाठ्यक्रमों का संचालन सफलतापूर्वक कर रहे हैं। इनमें ऊपरी आयुसीमा का कोई बंधन नहीं रखा गया है। बी. ए., बी. एस. सी., बी. काम., एम. ए. एम. एस. सी. तथा एम. काम. जैसी डिग्रियों के अलावा अनेक रोजगारपरक डिप्लोमा आदि की भी व्यवस्था की गई है। प्रबंध, होटल प्रबंध, पर्यटन, बैकिंग, श्रम कानून, पुस्तकालय विज्ञान, पत्रकारिता एवं जनसंपर्क तथा कार्मिक प्रबंध एवं औद्योगिक संबंध जैसे रोजगार सहायक स्नातकोत्तर डिप्लोमा करवाते है। इसके अलावा सेवारत शिक्षकों के लिये शिक्षा में डिग्री भी दी जाती है। शोधार्थियों के लिये अनुसंधान सुविधाएं भी उपलब्ध करवाई जा रही हैं। इस तरह देश भर में स्थापित ये विश्वविद्यालय परस्पर तालमेल एवं सहयोग की भावना से आगे बढ़कर पाठ्यक्रमों की गुणवत्ता में सुधार के प्रयास जारी रखे हुये हैं। आशा की जानी चाहिये कि अपनी शैशवास्था से यौवनावस्था की ओर उन्मुख ये विश्वविद्यालय जिन उद्देश्यों को लेकर स्थापित किए गए हैं उनमें अपनी सकारात्मक भूमिका निभाते रहेंगे। समस्त प्रशासनिक कार्य-प्रणाली अन्य पारंपरिक विश्वविद्यालयों की तरह संचालित की जाती है।

कुछ सुझाव

चूंकि मुक्त विश्वविद्यालयों की स्थापना हुए कोई बहुत समय नहीं हुआ है। ये अपनी शैशवास्था में ही जी रहे हैं। इनमें विभिन्न स्तरों पर अनेक सुधारों की आवश्यकता है। सर्वप्रथम इन विश्वविद्यालयों की समस्याओं पर गौर तलब किया जाना चाहिये तथा प्रमुख शिक्षाविदों से सलाह कर एवं सुझाव आमंत्रित करके इनके स्वरूप को निखारने के लिये कुछ ठोस कदम उठाये जाने चाहिये। देश भर के सभी खुले विश्वविद्यालयों को इंदिरा गांधी राष्ट्रीय खुले विश्वविद्यालय के नियंत्रण क्षेत्र में लाया जाए ताकि शैक्षिक स्तर में समानता बनी रह सके। गुणवत्ता सुधार के देशव्यापी प्रयासों का सभी विश्वविद्यालयों के जरिये सभी छात्रों को लाभ मिल सकेगा। इनमें उच्च शिक्षा के ऊंचे स्तरों को सुनिश्चित करने के लिये उच्च शैक्षिक मानदंड तय किये जाए ताकि अपरिहार्य कारणों से शिक्षा से वंचित रहे लोगों को एक और अवसर दिया जा सके। पाठ्यक्रमों में ऐसी रोचकता लाई जाए ताकि छात्र और शिक्षक के बीच सतत मूल्यांकन की प्रक्रिया जारी रखी जा सके। फिर इस कार्य में अनुभवी, सुविज्ञ एवं दक्ष अध्यापकों की सेवायें ली जायें। मुद्रित सामग्री को भेजने में होने वाले अनावश्यक विलम्ब से बचने के लिये अत्यंत सूझबूझ वाले कर्मचारियों को इस कार्य के लिये नियुक्त किया जाए। पठन-पाठन सामग्री की वितरण व्यवस्था में जहां संचार माध्यम महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहे हैं, वहीं दूरस्थ शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये अलग से दूरदर्शन एवं रेडियो चैनलों की पुख्ता एवं सुविधाजनक व्यवस्था की जानी चाहिये। पाठ्यक्रमों का ढांचा माड्यूलर प्रणाली के आधार पर तैयार किया जाए जिसमें क्रेडिट के संचयन की सुविधा हो। छात्रों को अधुनातन एवं उच्च शिक्षा सामग्री उपलब्ध कराने हेतु देश भर के अनेक जाने-माने विषय-विशेषज्ञों की सेवायें ली जाये। साथ ही शैक्षिक एवं शोध संस्थाओं से पाठ्यसामग्री विषयों की विशेषज्ञता के आधार पर तैयार करवायी जानी चाहिये। अध्ययन सामग्री को अलग-अलग इकाइयों एवं खंडों में इस प्रकार विभाजित करना चाहिये कि छात्र वर्ग इसे बोझ न समझकर रुचि के साथ पढ़ें। अंतिम किंतु महत्वपूर्ण बात यह है कि जहां सैद्धांतिक विषयों को पत्राचार सुविधा के अंतर्गत लाया जा चुका है वहीं विज्ञान के विषयों को भी इस परिधि में लाये जाने की आवश्यकता है।

नई शिक्षा नीति में भी खुले विश्वविद्यालयों की सार्थकता एवं महत्व को अंगीकार किया गया है। भारत में व्यापक एवं वृहत पैमाने पर खुले विश्वविद्यालयों की स्थापना हो चुकी है। अतः इनके संपूर्ण विकास परिष्कार पर बल दिया जाना चाहिये।

द्वारा श्री सुब्रह सिंह यादव
डी-16, कृष्णा नगर - I
लाल कोठी योजना,
टौंक रोड, जयपुर - 4

गहरी नींद अच्छे स्वास्थ्य के लिए आवश्यक

अभय कुमार जैन

नींद का मनुष्य के जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है। मनुष्य अपने जीवन का एक तिहाई हिस्सा सोते हुए गुजार देता है। नींद में परिवर्तन से मनुष्य की कार्य-क्षमता तथा उसके स्वास्थ्य पर बहुत बुरा असर पड़ता है। आज के युग में तनावपूर्ण जिंदगी और असंतोष के कारण मनुष्य इतना अशांत बन चुका है कि उसको स्वाभाविक नींद के लिए भी तरसना पड़ता है। अनिद्रा रोग सारे विश्व में महारोग की भांति फैलता जा रहा है। आज के इस दौर में नींद न आना एक आम शिकायत है। अनिद्रा आज के मशीनी युग की देन है।

कितनी नींद ले

डॉक्टरों का कहना है कि एक स्वस्थ मनुष्य के लिए औसतन 6-7 घंटे की नींद पर्याप्त होती है।

ब्रिटेन की भूतपूर्व प्रधानमंत्री मार्गरेट थैचर के अनुसार एक स्वस्थ और सामान्य व्यक्ति के लिए चार घंटे की नींद पर्याप्त होती है। बल्बों के आविष्कारक थॉमस एडीसन के अनुसार एक व्यक्ति को केवल दो घंटे की सोना चाहिए। कोई व्यक्ति कितनी देर सोता है यह निद्रा से प्राप्त लाभ का पैमाना नहीं है। आवश्यकता तो यह है कि सोने वाला कितने समय तक गहरी नींद या बिना बाधा के सोया है। बार-बार उचटने वाली 7-8 घंटे की नींद से तो बेहतर 2-3 घंटे की गहरी नींद ज्यादा महत्वपूर्ण एवं लाभदायक है।

अलग-अलग व्यक्तियों के लिए नींद की आवश्यकता अलग-अलग होती है, जैसे - एक माह के बच्चे को 21 घंटे, छः माह के 18 घंटे, बारह माह के 15 घंटे, चार वर्ष वाले 12 घंटे एवं 12 वर्ष वाले से ऊपर को 10 घंटे, सोलह से ऊपर वाले को 8 घंटे, तीस से ऊपर वाले को 6-7 घंटे तथा अधिक उम्र वाले को 5-6 घंटे की नींद लेनी चाहिए। शारीरिक तथा मानसिक कार्य करने वाले को कुछ अधिक नींद की आवश्यकता रहती है।

अनिद्रा के अतिरिक्त अधिक देर तक सोया रहना भी आलस्य की निशानी है एवं स्वास्थ्य के लिए अहितकर है। इंग्लैंड के मनोवैज्ञानिक डॉ. जोन जोम्ज के अनुसार अधिक सोने से रक्त प्रवाह प्रभावित होता है, अर्थात् धीमा पड़ जाता है। परिणामस्वरूप हृदय रोग उत्पन्न हो सकते हैं, फेफड़े कमजोर हो सकते हैं।

नींद और भूख जितनी बढ़ाओ, बढ़ जाती है। जितनी घटाओ, घट जाती है। दोनों का एक जैसा स्वभाव है।

अनिद्रा की परिभाषा

वास्तव में अनिद्रा की कोई परिभाषा देना कठिन है, लेकिन सीधे-सादे शब्दों मे यह कहा जा सकता है कि यदि कोई व्यक्ति प्रयत्न करने के बावजूद रात को, जो कि नींद का बेहतरीन समय है, सो न सके और नींद न आने के कारण चिंतित रहता है, तो समझना चाहिए कि वह नींद न आने की बीमारी से पीड़ित है।

इसके अलावा कोई व्यक्ति बहुत कम नींद लेता हो या रात्रि में बार-बार जग जाता हो या सोने में असुविधा महसूस करता हो अथवा बहुत सुबह नींद खुलने के बाद सो नहीं सकता हो तो वह इनसोमनिया (अनिद्रा) की बीमारी से पीड़ित माना जा सकता है।

चिकित्सा विज्ञान के अनुसार इनसोमनिया के कई कारण हो सकते हैं, जैसे बहुत तीव्र दर्द, अस्थमा, पुरानी खांसी, असुविधाजनक हड्डी प्लास्टर आदि। यदि किसी व्यक्ति को इन कारणों से नींद नहीं आती है तो उक्त बीमारियों का इलाज कर अनिद्रा से छुटकारा पाया जा सकता है। यदि किसी व्यक्ति को अनिद्रा का उक्त कारण अर्थात् शारीरिक कारण नहीं है, तो वह मनोवैज्ञानिक विकृति, जैसे रेस्टलेसनेस ऑफ मेनिया, नेन कोलिया या डिप्रेशन की स्थिति से ग्रस्त हो सकता है। ऐसे व्यक्ति को किसी कुशल मनोवैज्ञानिक की सलाह लेनी चाहिए।

अनिद्रा क्यों व कैसे

अनिद्रा के कई कारण है। प्रसिद्ध अमरीकी मनोचिकित्सक डॉ. एंथोनी वेल्स के अनुसार इसके अधिकांश कारण मनोवैज्ञानिक हैं। शारीरिक परेशानियां भी सोने में व्यवधान उपस्थित करती हैं।

अनिद्रा के मानसिक कारणों में ईर्ष्या, द्वेष, आकांक्षा, भय, चिंता, वियोग, मिलन की प्रतीक्षा, अत्यधिक उत्तेजना, क्रोध इत्यादि है। शारीरिक कारणों में कब्ज, अपच, भूखे पेट रहना, चाय, कॉफी, धूम्रपान, मदिरापान इत्यादि है।

नींद लाने के कुछ उपाय

अच्छी नींद प्राप्त करने के लिए दवाओं का सहारा लेना अच्छी बात नहीं है। नींद की गोलियां खाने से स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

- वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध कर दिया है कि पूर्व दिशा में सिर रखकर सोने से शांत एवं सुखमय नींद आती है।
- निद्रा के समय से लगभग तीन घंटे पहले ही भोजन कर लेना चाहिए, ताकि निद्रा के समय पाचनक्रिया को कम से कम कार्य करना पड़े, जो ऐसा नहीं करते है, वे अच्छी नींद नहीं ले सकते हैं।
- सोने से पहले शरीर की प्राकृतिक आवश्यकताओं को जैसे शौच, मूत्र इत्यादि को पूरा कर लेना चाहिए अन्यथा बीच में उठने से नींद में व्यवधान होता है।
- बिस्तर न तो अधिक कड़ा, न अधिक नरम होना चाहिए। मुलायम गद्दे पर सोने से उस समय भले ही आराम लगे, किंतु रात भर ऐसी स्थिति में सोने से शरीर में भारीपन अनुभव होगा।
- सोने का कमरा बहुत ही शांत एवं साफ सुथरा होना चाहिए। कमरे में ताजी हवा आने के लिए खिड़कियां एवं रोशनदान होना आवश्यक है। रात को बहुत ही मध्यम प्रकाश का बल्ब नीले या हरे रंग का लगाना चाहिए। सोने के कमरे में बेकार की वस्तुएं व बदबूदार सामान नहीं होना चाहिए। पलंग साफ सुथरा हो, उस पर साफ चादर हो।
- रात्रि में सोने से पूर्व ब्रुश करना चाहिए। हाथ पैर व मुंह धोना चाहिए। शारीरिक अनुकूलता होने पर स्नान करना चाहिए।
- सोते समय हल्की आवाज में संगीत सुनें, हल्की-फुल्की कहानियां एवं कविता या पत्र पत्रिकाएं पढ़ने से भी नींद शीघ्र आ जाती है।
- धुम्रपान या मदिरापान नहीं करना चाहिए। धुम्रपान करने से पाचनक्रिया पर असर पड़ता है। इसी प्रकार चाय अथवा काफी अधिक मात्रा में पीने से भी नींद न आने की शिकायत हो जाती है।
- अनिद्रा से बचने के लिए दिनचर्या को नियमित किया जाना चाहिए। प्रतिदिन प्रातः नियमित समय पर बिस्तर छोड़ देना चाहिए। बिस्तर में जाने से पूर्व तनावपूर्ण वातावरण से बचना चाहिए।
- नियमित व्यायाम भी नींद लाने में सहायक होता है। प्रतिदिन नियमित रूप से व्यायाम करना चाहिए। सायंकाल के समय 3-4 कि. मी. घूमना चाहिए, क्योंकि थकान आने से गहरी नींद आती है। दिन में नहीं सोना चाहिए। हां, गर्मियों में कुछ समय दिन में विश्राम करना चाहिए। सोने के समय हल्के कपड़े पहन कर सोयें, बिस्तर पर लेटकर सम्पूर्ण शरीर को आराम दें। पीठ के बल न लेटे - करवट के बल सोयें।
- जब पेट भरा होता है खाये हुए आहार का पाचन हो रहा होता है, तभी अच्छी नींद आती है अर्थात् नींद के लिए भरा हुआ पेट होना चाहिए। सोते समय एक गिलास गर्म दूध पीना चाहिए।
- पैरों के तलवों में सरसों के तेल की मालिश एवं सिर में हल्के से चमेली के तेल की मालिश करनी चाहिए।
- रात को सोते समय एक सेव का मुरब्बा खाकर गर्म दूध पीयें, एक माह तक।
- दही भी अनिद्रा में लाभ पहुंचाता है। रोगी को चाहिए कि पर्याप्त मात्रा में दही लेकर सिर पर मालिश करवायें। इससे नींद जल्दी आ जाली है। गर्मी के दिनों में भोजन के साथ दही का इस्तेमाल करना भी लाभप्रद रहता है।
- सौहार्दपूर्ण वातावरण का होना भी नींद लाने की आवश्यक शर्त है। अपने घर एवं परिवार जनों के बीच अच्छी व शीघ्र नींद आ जाती है।

आशा है, ये साधारण नुस्खे आपको आज की दौड़ती भागती तनावपूर्ण जिंदगी में गहरी व अच्छी नींद लाने में मदद करेंगे।

"तृप्ति" नन्दा रोड़,
भवानी मंडी (राज.)

ग्रामीण शिक्षा व्यवस्था में सुधार आवश्यक

✍ डा० एम० एम० शाह

किसी भी व्यक्ति, समाज, गांव, देश या विश्व के सर्वांगीण विकास को प्रभावित करने वाले विभिन्न कारकों में शिक्षा की अहम भूमिका रही है और रहेगी भी। परंतु जब यही शिक्षा उपेक्षा का शिकार हो तो भविष्य अंधकारमय हो जाता है। भारत में गांव जितना सजीव है उतना अन्य देशों में शायद नहीं तभी तो भारत को गांवों का देश कहा गया है। गांव की अपनी परिभाषा है, अपना स्वरूप है, अपना अर्थ है अपनी पहचान है और अपना गौरव भी। भारत को जानने हेतु उसके गांवों को, ग्रामीण जीवन को जानना होगा। जनसंख्या की दृष्टि से भारत विश्व का दूसरा देश है और इस की करीब 70 प्रतिशत जनता गांवों में निवास करती है तो फिर इस 70 प्रतिशत के शैक्षिक स्तर में सुधार लाए बिना देश के सुधार की बात सोचना अव्यावहारिक लगता है।

ग्रामीण शिक्षा की वर्तमान स्थिति के लिए कौन जिम्मेदार

ग्रामीण शिक्षा की वर्तमान स्थिति काफी असंतोषप्रद है। अशिक्षा के कारण ग्रामीण समुदाय अंधविश्वास, रूढ़िवादी मान्यताओं, बेकारी, परावलंबन, जनसंख्या विस्फोट, अनैतिकता, कर्त्तव्य बोध का अभाव, विश्व की गतिविध्रियों से अलग-थलग, गरीबी, सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक शोषण का शिकार बना हुआ है। संविधान के 45 वें अनुच्छेद में संविधान निर्माताओं ने प्रावधान किया कि संविधान लागू होने के दस वर्षों के अंदर 14 वर्ष की आयु के सभी बच्चों को अनिवार्य रूप से शिक्षा दी जाएगी परंतु आज 43 वर्षों के बाद भी उस दिशा में निराशाजनक उपलब्धि हाथ लगी, क्यों? इसके लिए क्या संविधान निर्माता दोषी हैं या हम सब? क्या गांव में सरकारी संसाधनों का अभाव है या ग्रामीणों के द्वारा उसके सदुपयोग की? सरकार ग्रामीणों के लिए जितनी प्रयत्नशील है क्या ग्रामीण उतने सक्रिय हैं? क्या सुधार के सारे दरवाजे बंद हो गए हैं या कहीं से सूर्योदय की आशा है? अशिक्षित ग्रामीणों को सही दिशा प्रदान करना क्या बुद्धिजीवियों का कर्त्तव्य नहीं? ईर्ष्या, द्वेष, साम्प्रदायिकता, जातीयता, आतंकवाद को निकाल बाहर करना क्या हम सब का कर्त्तव्य नहीं? विद्यार्थियों के बीच में ही पढ़ाई छोड़ने, विद्यालय में नामांकन न कराने जैसे कारणों की तह में आकर वस्तु-स्थिति का पता करना होगा और तद्नुरूप उसके उपचार की व्यवस्था कर शिक्षा की गति तेज करनी होगी। ऐसी कोई समस्या नहीं.जिसका समाधानं नहीं।

शिक्षा समितियां गठित की जाएं

पंचायत या ग्रामीण स्तर पर शिक्षा समिति बननी चाहिए जो चौदह - पंद्रह वर्ष की उम्र तक के बच्चे बच्चियों का पता लगाये, संख्या के अनुरूप विद्यालय, पुस्तकों जैसे संसाधनों की व्यवस्था करें। अगर सरकारी विद्यालय में पर्याप्त व्यवस्था न हो तो वैकल्पिक व्यवस्था करें। सभी बच्चे बच्चियों के नामांकन हेतु अभिभावकों को प्रेरित करें। व्यवहारतः जिन अभिभावकों के पास पर्याप्त कृषि योग्य भूमि है उनकी धारणा होती है कि अगर उनके बच्चे पढ़ेंगे तो नौकरी करना चाहेंगे और फिर इस भूमि का क्या होगा। ऐसा सोच कर वे या तो बच्चे का नामांकन ही नहीं कराते और कभी कराते भी हैं तो उसकी शिक्षा के प्रति सचेत नहीं होते। कुछ अभिभावक जिनका एक ही लड़का होता है उनकी यह मान्यता होती है कि शिक्षा के बाद वह नौकरी करने के लिए घर से बाहर रहेगा, उस स्थिति में बुढ़ापे में हमें कौन देखेगा। ऐसा समझकर वे बच्चे को पढ़ने के अवसर से वंचित कर देते हैं। कुछ अभिभावक जिन्हें केवल लड़की होती है वे हमेशा ही लड़के के लिए चितिंत रह लड़की के भविष्य के प्रति लापरवाह रहते हैं। उनका यह मानना है कि लड़की तो पराये घर की अमानत है। इसे एक न एक दिन दूसरे घर जाना ही है तो पढ़ाने का कोई मतलब नहीं। कुछ अभिभावकों के इतने अधिक बच्चे होते हैं कि जिसकी समुचित व्यवस्था कर पाना उनके आर्थिक बलबूते से बाहर होता है। वैसी स्थितियों में बच्चे को पढ़ाई से वंचित कर देते हैं। इस प्रकार की अनेकानेक समस्याएं समाज को दिन प्रतिदिन पीछे की ओर ढकेलती जा रही हैं। बुद्धिजीवियों का कर्त्तव्य है कि ग्रामीण समुदाय को यह समझाएं कि शिक्षा का संबंध केवल नौकरी से नहीं वरन यह जीवन जीने की कला प्रदान करती है। यह जीवन की गुत्थियों को सुलझाती है, जीवनयापन में कुशलता प्रदान करती है, शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक विकास का अवसर देती है अंर्तनिहित गुणों का विकास करती है।

(शेष पृष्ठ 26 पर)

युवा पीढ़ी की गंभीर समस्या - बेरोजगारी

राजीव रंजन वर्मा

भारत की जनसंख्या 1991 की जनगणना के अनुसार 84.39 करोड़ है। 1947 में भारत की जनसंख्या 34.2 करोड़ थी। इस तरह स्वतंत्रता के बाद से जनसंख्या में ढाई गुणा की वृद्धि हुई है और अभी यह दिन प्रतिदिन तेजी से बढ़ती ही चली जा रही है। अगले दस वर्षों में देश की जनसंख्या में लगभग 20 करोड़ की वृद्धि होने की संभावना है। जनसंख्या में बेतहाशा बढ़ोतरी से बेरोजगारी, महंगाई, कालाबाजारी, साम्प्रदायिकता, आतंकवाद और भ्रष्टाचार का जन्म होता है और इन सबका विकराल रूप गरीबी और बेरोजगारी के रूप में देश के सामने प्रकट होता है। बेरोजगारी देश की युवा पीढ़ी के लिए गंभीर समस्या बनी हुई है। प्रत्यक्ष रूप से बेरोजगारी देश के आर्थिक एवं सामाजिक विकास पर प्रश्न चिन्ह लगा रही है। बेरोजगारी का मुख्य कारण जनसंख्या में तीव्र गति से वृद्धि, श्रमिकों की संख्या में दिन प्रतिदिन की वृद्धि, शिक्षा के स्तर मे गिरावट, व्यावहारिक ज्ञान की कमी, कुछ प्रशासनिक त्रुटियां, समाज में नैतिक एवं चारित्रिक पतन आदि महत्वपूर्ण कारक हैं। 1987 में देश में बेरोजगारों की संख्या गांव एवं शहर को मिलाकर अनुमानत : 8 करोड़ के लगभग थी। अगर जनसंख्या वृद्धि की रफ्तार ऐसी ही रही तो देश में 21 करोड़ से अधिक बेरोजगारों के साथ भारत 21वीं शताब्दी में प्रवेश करेगा।

जनसंख्या में तेजी से वृद्धि सामान्यतः तब होती है जब मृत्यु दर तो घट जाये किंतु जन्मदर में गिरावट न हो। फलस्वरूप जन्मदर में वृद्धि तथा मृत्यु दर में कमी से जनसंख्या विस्फोट होता है। महामारी, मलेरिया तथा तपेदिक जैसी बीमारियों पर नियंत्रण, अकालों में कमी इत्यादि कारणों से भी मृत्युदर में गिरावट आयी है। मुख्यतः विवाह की व्यापकता, धार्मिक अंधविश्वास, अधिक संतान की लालसा, संयुक्त परिवार की प्रथा, गर्भ निरोधकों के सीमित प्रयोग के कारण देश की जनसंख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती चली जा रही हैं।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद शिक्षा के क्षेत्र में सुधार तो अवश्य ही हुआ है, परंतु सुधारों की जांच पड़ताल की जाये तो काफी विसंगतियां दिखाई पड़ेंगी। उग्रवाद, हिंसा, असहिष्णुता, अनैतिकता आदि की कोई सीमा नहीं रह गयी है। हमारी विवशता इस सीमा तक बढ़ गयी है कि हम चाहते हुए भी देश की आत्मघाती स्थिति को नहीं रोक पा रहे हैं। आज युवाओं को जीवनयापन के लिए उचित अवसर नहीं मिल पा रहे हैं। इसके लिए शिक्षा नीति काफी हद तक उत्तरदायी है। शिक्षण संस्थानों में शिक्षा का व्यापार होने लगा है। आज के युवक/युवतियों के पास डिग्रियां हैं, डिप्लोमा है, पर न तो व्यावहारिक ज्ञान है और न ही कोई नैतिक आचार विचार है। वे अपनी डिग्रियां लिए घूमते रहते हैं।

शिक्षा में व्यावहारिक ज्ञान के अभाव के कारण शिक्षित लोग जीवन की वास्तविकता से वंचित केवल सैद्धान्तिक ज्ञान तक ही सीमित रह जाते हैं और उनका ज्ञान अधूरा रह जाता है। अधिकांशतया प्रतियोगिता परीक्षाओं के लिए विश्वकोशीय ज्ञान के प्रति विदेशी प्रवृति ने भारतीय प्रतिभा के मूल को नष्ट कर दिया है, जिससे युवक/युवतियां दिशाहीन हो रहे हैं और बेरोजगारी बढ़ती ही चली जा रही है।

अधिकांशतया शिक्षित वर्ग के मन में शारीरिक श्रम करने के प्रति घृणा होने से भी बेकारी में वृद्धि हुई है। शिक्षित व्यक्ति स्वयं को समाज के अन्य व्यक्तियों से उच्च श्रेणी का मानकर शारीरिक श्रम जैसे काम करने से कतराते हैं। वह शासन करने वाली नौकरी की तलाश में रहते हैं, जो उन्हें आसानी से प्राप्त नहीं हो पाती है और यही मनोवृत्ति बेरोजगारी को जन्म देती है। तकनीकी योग्यता, अतिरिक्त योग्यता, अनुभव इत्यादि का रोजगार प्राप्त करने में बहुत बड़ा योगदान रहता है। यह सत्य है कि शिक्षा के प्रति लोगों की जागरूकता बढ़ी है। 1981 में साक्षरता दर 43 प्रतिशत थी, जोकि 1991 में 9 प्रतिशत की अतिरिक्त वृद्धि के बाद 52 प्रतिशत हो गयी।

मानव-जीवन के लिए रोजगार एवं धनोपार्जन आवश्यक है और इसी उद्देश्य से युवा लोग शिक्षा ग्रहण करते हैं। आज किसी भी अच्छे रोजगार को प्राप्त करने के लिए शिक्षित होना आवश्यक है। आज शिक्षा, ज्ञान के लिए नहीं बल्कि रोजगार के लिए ग्रहण की जाती है। स्वावलंबन और चरित्र की उपेक्षा करके आर्थिक स्पर्धा और कम से कम मेहनत द्वारा, बिना सत् असत् पर विचार किए, उचित अनुचित का ख्याल किये बिना अधिक से अधिक धन जमा करना आज प्रमुख ध्येय बन गया है।

समस्या की गंभीरता को देखते हुए आज शिक्षा नीति को रोजगार की दिशा में अधिक प्रभावकारी बनाने की जरूरत है। हमें अपनी शिक्षा नीति में क्रांतिकारी बदलाव लाना होगा। शिक्षा नीति का महत्व व्यक्ति के संपूर्ण विकास, संपूर्ण योग्यता, संपूर्ण व्यक्तित्व के विकास में निहित होना चाहिए। वास्तविक शिक्षा नीति में सहयोग, श्रमप्रियता, रचनात्मक बौद्धिक चेतना, विनम्रता और शुद्ध विचार की भावना का समावेश होना चाहिए। शिक्षा नीति न सिर्फ रोजगार को ध्यान में रखकर बनायी जानी चाहिए बल्कि स्वरोजगार को भी ध्यान में रखकर रची जानी चाहिए। विश्व की कोई भी सरकार अपने देश के सभी युवाओं को रोजगार उपलब्ध नहीं करा सकती। विश्व के अन्य देश अपने नवयुवक/नवयुवतियों को ऐसी शिक्षा देते हैं कि वे स्वावलंबी बन सकें। भारत के हरेक नागरिक को स्वावलंबन की शिक्षा प्राप्त होनी चाहिए, ताकि देश का प्रत्येक नागरिक रोजगार/स्वरोजगार के अधिक से अधिक तथा नये-नये अवसर ढूंढ सकें। खास तौर पर सरकार उद्योगों एवं व्यवसायों को समुचित अवसर देकर बेरोजगारी को कम कर सकती है।

आठवीं पंचवर्षीय योजना का मुख्य लक्ष्य "रोजगार संवर्धन तथा निर्यातों" में तीव्र वृद्धि है। इसके अलावा ऊर्जा उत्पादन, यातायात, संचार और अशिक्षा पर विशेष ध्यान दिया गया है।

भारत सरकार ने बेरोजगारी के उन्मूलन के लिए कई कदम उठाए हैं।

गांव की गरीबी को दूर करने के लिए समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम अपनाया गया है। इसका उद्देश्य प्रत्येक गांव में निर्धन परिवारों की पहचान कर उन्हें हर तरह की आर्थिक सहायता देना है। इसका मुख्य उद्देश्य जीविकोपार्जन के साधनों में सुधार, विकास कार्यों के न्यायोचित वितरण तथा आय व उपभोग के स्तर में सुधार लाकर ग्रामीण लोगों के जीवन स्तर को बेहतर बनाना है।

स्वरोजगार के लिए ग्रामीण युवकों को प्रशिक्षण कार्यक्रम योजना के अंतर्गत प्रत्येक प्रखंड से 40 ग्रामीण युवकों को स्वरोजगार प्रशिक्षण दिये जाने का लक्ष्य रखा गया। प्रशिक्षित व्यक्तियों को औजार एवं संयंत्र लगाने या रोजगार शुरू करने के लिए सरकार द्वारा सहायता राशि दी जाती है।

राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार योजना वर्ष 1980 से चालू की गयी। रोजगार के बदले दी जाने वाली मजदूरी पूर्ण रूप से मुद्रा के रूप में न होकर अंशतः अनाज के रूप में भी दी जाती है। इस योजना का उद्देश्य ग्रामीण गरीब तबके के लोगों को रोजगार प्रदान करना है।

ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी योजना वर्ष 1983-84 में प्रारंभ की गयी। प्रत्येक भूमिहीन परिवार से वर्ष में कम से कम एक व्यक्ति को 100 दिन का रोजगार प्रदान करने का प्रावधान है जिसके लिए श्रमिकों को प्रतिदिन साढ़े तीस रुपये प्रति श्रमिक की दर से देने की स्वीकृति दी गयी है।

ग्रामीण क्षेत्र के निर्धन परिवारों के सदस्यों के समुचित विकास की मंशा से एक विशेष कार्यक्रम "ग्रामीण महिला एवं शिशु विकास कार्यक्रम" वर्ष 1983 से शुरू किया गया जिसमें महिलाओं को प्रत्यक्ष रोजगार के अवसर उपलब्ध कराये गये हैं।

1989 में आरंभ जवाहर रोजगार योजना का मुख्य उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्र में बेरोजगार एवं अर्द्ध रोजगार प्राप्त व्यक्ति के लिए रोजगार के उचित अवसर पैदा करना था। साथ ही ग्रामीण जीवन में व्यापक सुधार लाना भी था। गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले परिवार के किसी एक सदस्य को वर्ष भर में कम से कम 100 दिन का रोजगार प्रदान करने की व्यवस्था की गयी। तीस प्रतिशत रोजगार के अवसर महिलाओं के लिए आरक्षित रखे गये। राज्यों को इस योजना के अधीन साधनों का आवंटन करते समय गरीबी रेखा से नीचे जनसंख्या का अनुपात, अनुसूचित जातियों, जनजातियों तथा खेतिहर मजदूरों की जनसंख्या का अनुपात तथा कृषि उत्पादकता के स्तर द्वारा किया जाता है। इसके अलावा पहाड़ी इलाकों, रेगिस्तानों तथा द्वीपों की समस्याओं का खास ध्यान रखा जाता है।

बेरोजगारी की समस्या के सही निदान के लिए निम्नांकित कदम उठाये जा सकते हैं :-

(1) देश के बेरोजगारों का लेखा जोखा एवं सर्वेक्षण बड़े पैमाने पर किया जाए। सर्वेक्षण में निम्न बातों पर ध्यान दिया जाना चाहिए।
   - शहरी/ग्रामीण बेरोजगार
   - शिक्षित/अशिक्षित बेरोजगार
   - महिला/पुरुष बेरोजगार
   - तकनीकी/सामान्य बेरोजगार

   इन सभी का शोध मूल्यांकन एवं सर्वेक्षण कर उन्हें योग्यता एवं रुचि के अनुसार विभिन्न उद्योगों में लगाना देश तथा जनता के हित में होगा।

(2) जो शहरी/ग्रामीण व्यक्ति जन्मजात पेशेवर हैं एवं उनके पास पूंजी का अभाव है या उच्च स्तरीय उत्पादन करने की क्षमता है लेकिन प्रशिक्षण के अभाव में वे कोई पेशा नहीं कर पाते हैं उन्हें प्रशिक्षित कर अल्प ब्याज पर धन और

संयंत्र एवं औजार उपलब्ध कराये जाने चाहिए।

(3) भारत जैसे विशाल जनसंख्या वाले देश में हाथों को उत्पादकता की बड़ी शक्ति बनाकर उद्योग खड़े किये जाने चाहिए। देश में भारी उद्योगों की जगह छोटे-छोटे यूनिटों को शुरू करने की व्यवस्था की जानी चाहिए, जिससे अधिक से अधिक संख्या में लोग उद्योगों में लगाये जा सकें।

(4) शिक्षा को व्यावहारिक बनाना देश की महत्वपूर्ण आवश्यकता है। छात्र छात्राओं की प्रतिभा, रुचि, मानसिक प्रवृत्ति एवं योग्यता के आधार पर जांच कर उन्हें प्रशिक्षित किया जाना चाहिए। शिक्षित एवं प्रशिक्षित युवक/युवतियों के लिए स्वरोजगार की व्यवस्था की जानी चाहिए।

(5) विभिन्न क्षेत्रों का सर्वेक्षण कर वहां के उत्पादन पर आधारित उद्योग लगाने की व्यवस्था की जानी चाहिए जिससे कच्चे माल के लिए उन्हें मोहताज न होना पड़े। साथ ही उचित बाजार की व्यवस्था भी होनी चाहिए।

जनसंख्या की तीव्र गति से वृद्धि, गरीबी, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार जैसी समस्याओं के लिए एक लंबी अवधि की रूप-रेखा तैयार कर संतुलित ढंग से कार्यान्वित की जा सकती है। साथ ही साथ ईमानदारी, आत्मसंयम, कर्त्तव्यनिष्ठा एवं सरकार की विभिन्न योजनाओं के द्वारा लक्ष्य की प्राप्ति से स्वर्णिम भारत की कल्पना साकार की जा सकती है।

बिहार ग्रामीण विकास संस्थान
हेहल, रांची - 834005

ग्रामीण शिक्षा व्यवस्था...
(पृष्ठ 23 का शेष)

वर्तमान स्थिति में अगर पंचायत स्तर पर सोचें तो लगता है कि करीब हर पंचायत में प्राथमिक, मध्य एवं उच्च विद्यालय अवश्य होते हैं जहां विद्यालय स्तर तक की पढ़ाई आसानी से पूरी की जा सकती है। गांव के लोग किसी न किसी पैतृक व्यवसाय से संबद्ध होते हैं जिसकी उपेक्षा न करते हुए उच्च एवं उच्चतर शिक्षा के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए। बुद्धिजीवियों को व्यावसायिक कठिनाइयों का समाधान भी प्रस्तुत करना चाहिए। अगर किसी परिवार में चार बच्चे हैं तो बड़े बच्चे को अपने छोटों का मार्गदर्शन खुद कर अभिभावक के बोझ को कम करना चाहिए।

विभिन्न विभाग के ग्रामीण कार्यकर्त्ताओं में भी अंर्तसहयोग को आवश्यकता है। शिक्षा की गति को तीव्र करने के लिए जब तक सभी मिलकर साथ सक्रिय न होंगे तब तक ग्रामीण समुदाय अंधकार में जीवन यापन के लिए विवश होगा। किसी भी उन्नत देश के संबंध में अगर विचार करें तो देखते हैं कि उनकी आर्थिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनैतिक समृद्धि में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। वहां की सरकार एवं जनता ने सम्मिलित रूप से शिक्षा को समृद्ध कर देश को उन्नति के चरम शिखर पर पहुंचा दिया है। स्वस्थ शैक्षिक माहौल अनेकानेक समस्याओं का समाधान करने में अक्षम होता है। अनावश्यक समस्याएं बाधक नहीं बन पाती हैं।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि पंचायत स्तर पर स्थानीय शैक्षिक समस्याओं के समाधान की तलाश करनी चाहिए। प्रतिष्ठित व्यक्तियों, समाज सेवियों, बुद्धिजीवियों, शिक्षा से संबद्ध कार्य-कर्त्ताओं को सजग एवं प्रयत्नशील हो अपेक्षित संसाधनों की व्यवस्था करनी चाहिए। समय-समय पर प्रगति की समीक्षा होनी चाहिए। प्रत्येक विद्यार्थी की गतिविधियों पर निगरानी रखनी चाहिए। स्वस्थ एवं आदर्श समाज में क्षमा, दया, त्याग, ईमानदारी, अहिंसा, भाईचारा सहयोग जैसे मानवीय मूल्यों की स्थापना की जानी चाहिए। स्वावलंबन की भावना को प्रोत्साहित करना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति एवं समाज को अपने आप में झांकने की कोशिश करनी चाहिए और समयानुसार अपने आप में सुधार लाकर एक आदर्श प्रस्तुत करना चाहिए। अगर हम देश की खोई गरिमा और नालंदा तक्षशिला के इतिहास को वापस लाना चाहते हैं तो शैक्षिक माहौल में अपेक्षित सुधार लाना होगा अन्यथा समाज की बिगड़ती स्थिति को हम सही दिशा की ओर नहीं मोड़ सकते।

केंद्रीय विद्यालय,
कंकड़बाग, पटना - 20
(बिहार)

बढ़ते हुए खर्च को घटाना है

✍ ममता

गांव देहात में बने घर आज भी अधिकांशतः कच्चे होते हैं और मिट्टी के कच्चे मकान बरसात के दिनों में जर्जर होने लगते हैं। ढहती हुई दीवारें अक्सर भरभर्रा कर बैठ जाती हैं। ग्रामीण आवास की यह समस्या बड़ी महत्वपूर्ण है। हमारे पिछड़े हुए देहाती इलाकों में आज भी उस प्रौद्योगिकी के इस्तेमाल की बेहद कमी है जो ग्रामीण क्षेत्रों के लिए उपयुक्त एवं किफायती है।

ध्यान देने योग्य बात है कि ग्रामीण क्षेत्रों के लिए सर्वाधिक उपयुक्त तथा सस्ते घर बनाने की उपयोगी तकनीक देने वाले सुप्रसिद्ध वास्तुकार लारी बेकर भी हमारे देश में हैं। ग्रामीण परिवारों के लिए घर बनाने के लिए राष्ट्रीय स्तर पर काम करने वाली शीर्ष आवासीय संस्था 'हुडको' भी काम कर रही है। लेकिन बावजूद इसके ग्रामीण आवास की समस्या आज भी विकराल है। घरों की कमी है। निर्माण सामग्री महंगी है और उपयुक्त तकनीक का अभाव निरंतर दिखाई देता है।

अनुमान है कि हमारे देश में तीन करोड़ मकानों की कमी है, जो इस सदी के अंत तक पांच करोड़ से भी अधिक हो जाएगी। इनमें से दो करोड़ मकान ग्रामीण क्षेत्रों में चाहिए। मौजूदा स्थिति में कुल तेरह करोड़ मकान हमारे देश में हैं जिनमें से आधे से अधिक गारे मिट्टी से बने हैं, यानि कि कच्चे हैं या अधपक्के हैं। गांवों में बने कुल मकानों में से 80 प्रतिशत मकान मिट्टी के बने हैं। बड़े शहरों में तो तेजी से लोहे और कंकरीट की बहुमंजिली इमारतें बन रही हैं। मिट्टी सीमेंट का विकल्प तो नहीं बन सकती, लेकिन फिर भी थोड़े बहुत सुधार से गृह-निर्माण में उपयुक्त अवश्य सिद्ध हो सकती है जिससे औसत परिवारों के रहने के लिए घर बन सकते हैं।

उच्च कोटि के शिल्पी श्री लारी बेकर को ग्रामीण क्षेत्रों में कम लागत से बने अच्छे मकानों की विधियां विकसित करने के क्षेत्र में अभूतपूर्व योगदान के लिए वर्ष 1987 का "राष्ट्रीय पर्यावास पुरस्कार" देकर सम्मानित किया जा चुका है। उन्होंने कम दिखती ईंटों और आर. सी. सी. की सुंदर टाइलों वाली छतों से युक्त खुले हवादार और सस्ते भवन-निर्माण की जो विधियां दी हैं उनसे आज केरल में यह हालत है कि अमीर, गरीब, निजी-सरकारी, हर क्षेत्र में भवन-निर्माण में लारी बेकर की ही छाप दिखाई देती है। लारी बेकर ने सस्ते मकान बनाने के क्षेत्र में जो नए आयाम स्थापित किए हैं, वह निःसंदेह प्रशंसनीय हैं तथा भारत जैसे विकासशील देश के लिए उपयोगी एवं आवश्यक हैं।

1985 में त्रिचुर में ग्रामीण विकास के लिए विज्ञान और प्रौद्योगिकी केंद्र (कास्टफोर्ड) की स्थापना की गई थी। यह संस्था नव-विकसित विधियों से गृह-निर्माण कार्य को लोकप्रिय बनाने की दिशा में महत्वपूर्ण कार्य कर रही है। संस्था में इंजीनियर/वास्तुकार (आर्किटेक्ट) और राज-मिस्त्री एवं कारीगरों को प्रशिक्षण दिया जाता है ताकि वे निर्माण कार्य को सस्ता और बेहतर बना सकें।

देश में कमजोर वर्ग की आवास समस्या को दूर करने के लिए आवास तथा नगर विकास निगम (हुडको) ने बड़े पैमाने पर काम किया है। कम जमीन पर कम लागत से सुंदर और टिकाऊ मकान बनाने के लिए प्रशिक्षण देने के लिए निर्माण केंद्र इस निगम द्वारा स्थापित किए जाएंगे जिनमें से अनेक केंद्र देश के विभिन्न भागों में चालू हो गए हैं। इनमें राजमिस्त्रियों तथा बढ़ई आदि को प्रशिक्षित किया जाता है। ग्रामीण क्षेत्रों में आवास समस्या को सुलझाने की दिशा में यह एक महत्वपूर्ण कदम कहा जाएगा।

रुड़की स्थित केंद्रीय भवन अनुसंधान संस्थान ने भी कम लागत की भवन निर्माण सामग्री बनाने की अनेक विधियां विकसित की हैं। मकान बनाने के लिए सस्ती ईंट, घटिया और फूलने वाली मिट्टी में उड़न राख (फ्लाई ऐश) मिलाकर बनाई जा सकती है। ताप बिजली घरों से निकलने वाली राख का यह एक बेहतर उपयोग है। इस प्रकार की विधियां अपना कर गृह निर्माण की लागत को किफायती किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त यह भी जरूरी है कि इस तरह की तमाम जानकारी देश के गांवों, गलियों और चौपालों तक पहुंचे जिससे कि ग्रामीण जन उसका लाभ उठा सकें।

यद्यपि 21वीं सदी की तैयारी और मिट्टी गारे का उपयोग दोनों बातें एक दूसरे से मेल नहीं खातीं, फिर भी हमारे देश में इतने

बड़े पैमाने पर जो कुछ चल रहा है उसे सुधारा तो जा सकता है। यही असल मकसद भी है। इस संदर्भ में उल्लेखनीय है कि 25 नवम्बर 1987 को त्रिवेन्द्रम में गारा वास्तुशिल्प पर एक अंतर राष्ट्रीय सम्मेलन हुआ था जिसमें गारे के उपयोग पर अनुभवों और विचारों का विनियम, ग्रामीण क्षेत्रों में उसकी प्रासंगिकता से जुड़े अनेक पहलुओं पर विस्तार से चर्चा हुई थी। गारे और चिनाई को लेकर हमारे देश में पिछले एक साल में बहुत कुछ हुआ है। आवास तथा नगर विकास निगम ने भी इस दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किया है जिससे गारे मिट्टी से संबंधित नई तकनीकें विकसित हुई हैं।

केन्द्रीय भवन अनुसंधान संस्थान, रूड़की में जलसह्य मिट्टी गारा बनाने की एक सरल विधि विकसित की गई है जो आसानी से अपनाई जा सकती है। इस विधि में तालाब की चिकनी मिट्टी या स्थानीय मिट्टी में भूसा मिला कर जो गारा तैयार किया जाता है उसमें यदि 20 से 25 प्रतिशत चिकनी, 40 से 50 प्रतिशत बलुई तथा शेष सिल्ट एवं दोमट मिट्टी हो तो गारा अच्छा बनता है। कंकड़ पत्थर निकाल कर उसे दस पन्द्रह दिन तक रोज पानी से गूंथना चाहिए क्योंकि भूसे के रेशे सड़ने के बाद वे गारे की शक्ति बढ़ा देते हैं। मिट्टी के वजन का 6 प्रतिशत भूसा (गेहूं या धान का) मिलाना बेहतर होता है।

गारा बन जाने के बाद थोड़ा-सा प्लास्टर करके देख लेना चाहिए। यदि सूखने के बाद उसमें दरार दिखाई दे तो आवश्यकतानुसार बालू मिला देना चाहिए। पुराना भूसा मिलाना और भी अधिक अच्छा रहता है क्योंकि वह जल्दी ही गल जाता है। गारे को फावड़े से काट कर बीच से मिलाया जाता है। गारा तैयार होने पर उसे परख कर देख लेना चाहिए फिर गारे में मिलाने के लिए तारकोली घोल तैयार करना चाहिए।

पानी से कटाव की समस्या से निबटने के लिए पांच हिस्सा तारकोल में एक हिस्सा मिट्टी का तेल मिला कर गर्म करें और अच्छी तरह से चलाते रहें। जब तारकोल घुल जाए तो उसे गारे पर सावधानी से डाल दें। उसे फावड़े की सहायता से गारे में अच्छी तरह कई बार मिलाएं। बस तारकोली गारा तैयार हो गया। लेकिन इसके पूर्व थोड़ी सी तैयारी अवश्य कर लें। दीवार में यदि दरारें हों तो उसे भर कर सूखने दें। दीवार यदि उबड़ खाबड़ हो तो उसे एक सार कर लें। साथ ही पहले हल्का सा पानी छिड़क लें और फिर ऊपर से नीचे की ओर प्लास्टर करना शुरू करें दें।

तैयार किए गए गारे में ढेले बिल्कुल नहीं होने चाहिए। तारकोल को ही मिट्टी के तेल में मिलाएं। यदि मिट्टी का तेल उसमें मिलाएंगे तो वह ऊपर रह जाएगा और दिक्कत पड़ेगी। मिट्टी का तेल कभी गर्म न करे। सिर्फ तारकोल को पिघलाएं और 80 से 100 ग्रेड का तारकोल उपयोग करें और प्लास्टर की मोटाई 12 से 20 मिलीमीटर तक ही रखें। तारकोली घोल के प्लास्टर का स्वास्थ्य पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नही पड़ता।

जब यह प्लास्टर थोड़ा सूख जाए तो बराबर मात्रा में गोबर और मिट्टी का गाढ़ा घोल बना कर ऊपर से लेप कर दें। लेकिन उस में भी तारकोल का थोड़ा-सा घोल मिला लें ताकि छूटी हुई दरारें भर जाएं और कोई छेद न छूटे। इस तरह की दीवारें 8-10 साल तक जलसह्य बनी रहती हैं और बरसात में उन्हें खतरा नहीं होता। इस तरह के प्लास्टर में खर्चा भी कम आता है। सफेदी करने पर यह सीमेंट के प्लास्टर जैसा लगता है जिससे मकान की मजबूती और सुंदरता बढ़ जाती है।

ग्रामीण क्षेत्रों में बहुत सी सामग्री सहज उपलब्ध होती है। जैसे राजस्थान में पत्थर, केरल में बांस, उ० प्र० में फूंस और पंजाब में गेहूं का भूसा आदि। इनमें चूना सुर्खी अथवा सीमेंट मिलाकर उपयुक्त सामग्री निर्माण स्थल के आसपास तैयार की जा सकती है। इसे स्थानीय वस्तुओं से तैयार किया जा सकता है। इससे निर्माण में उपकरणों तथा तकनीक का उपयोग भी कम करना पड़ता है। भारत की जलवायु तथा भूमि के हिसाब से भी यह सामग्री सीमेंट और प्लास्टिक आधारित आधुनिक सामग्री से अधिक अच्छी रहती है। लेकिन आवश्यकता उनके उपयोग करने के बारे में जानकारी उपलब्ध कराने की रहती है। उदाहरण के तौर पर यह बात सच है कि मिट्टी गारे के ऐसे मकानों के लिये यह जरूरी है कि उसका ऊपरी हिस्सा और नींव मजबूत हो जिससे तात्पर्य यह है कि सुविधा हेतु उसकी नींव पत्थर या कंकरीट की हो और छत भी कुछ इस तरह से बने कि वह दीवारों को पानी से बचा कर खड़ी रख सके। केंद्रीय भवन निर्माण अनुसंधान, संगठन, रुड़की ने मिट्टी के ऐसे उपयोगी प्लास्टर का विकास किया है जो ऐसे मकानों को अधिक समय तक कायम रहने वाला बना देता है। इसका प्रचार गांवों में होना चाहिए। उन्नत विधि से यह प्लास्टर बिना किसी विशेष रखरखाव के ही तीन से पांच वर्ष तक वर्षा की बौछारों को झेल सकता है। इसके अलावा फूंस की छतों के लिये अग्नि निरोधक तरीके का भी विकास किया गया है। काली मिट्टी, जिसमें कपास पैदा की जाती है, के साथ चूने और डामर का मिश्रण करना सर्वाधिक उपयुक्त सिद्ध हुआ है। कम खर्च में यथा संभव बेहतर मकान बनाने लिए धन से अधिक जरूरत समझदारी और तैयारी की होती है। हमारे देश में आम

(शेष पृष्ठ 31 पर)

कीट बनेंगे कीटनाशक

✍ विनोद कुमार

कृषि वैज्ञानिकों ने कृषि कार्यों में कीटनाशकों के अंधाधुंध इस्तेमाल के तात्कालिक व दूरगामी दुष्प्रभावों के मद्देनजर कीटों के जैविक नियंत्रण की निरापद सुरक्षित और प्रभावी विधियां विकसित की हैं। फ़सलों को नुकसान पहुंचाने वाले कीटों के नियंत्रण के लिए कीटनाशकों के स्थान पर जैविक नियंत्रण को अपनाकर कृषि उपज में वृद्धि की जा सकती है और साथ ही मिट्टी, पर्यावरण और मानव स्वास्थ्य की भी रक्षा की जा सकती है।

विगत वर्षों में कीटनाशकों के बड़े पैमाने पर इस्तेमाल से पर्यावरण, मानव स्वास्थ्य और भूमि की उर्वरता के लिए खतरा उत्पन्न हो गया है। रासायनिक कीटनाशकों के प्रयोग से एक ओर जहां कृषि पैदावार में भारी वृद्धि हुई वहीं दूसरी ओर खाद्य व पेय विषाक्तता, पर्यावरण प्रदूषण और भूमि की उर्वरता में ह्रास जैसी गंभीर समस्याएं सामने आईं। साथ ही कीटनाशक अवशिष्टों के दूरगामी दुष्प्रभाव, कम हानिकारक कीटों के अधिक हानिकारक कीटों में परिवर्तन तथा कीटों में परपंरागत कीटनाशकों के प्रति प्रतिरोध क्षमता विकसित होने जैसी समस्याएं भी उत्पन्न हुई हैं। इन समस्याओं ने कीटनाशकों के भावी उपयोग पर प्रश्न चिन्ह लगा दिया है। कीटनाशकों का इस्तेमाल अब मानव जीवन के लिए अत्यंत खतरनाक सिद्ध हो चुका है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार विश्व भर में प्रतिवर्ष कीटनाशकों के छिड़काव के कारण कम से कम 20 हजार लोगों की मृत्यु होती है तथा लाखों लोग बीमार हो जाते हैं।

हमारे देश में कीटनाशकों के कारण अनेक भीषण दुर्घटनाएं हो चुकी हैं। भारत की सबसे बड़ी औद्योगिक त्रासदी भोपाल स्थित कीटनाशक बनाने वाली अमरीकी बहुराष्ट्रीय कंपनी यूनियन कारबाइड के कारखाने से मिथाइल आइसोसायनेट (मिक) के रिसाव के कारण हुई। एक अन्य दुर्घटना कर्नाटक के चिकमंगलूर जिले में 1975 में हुई। यहां के लोग अचानक लकवे से ग्रसित हो गए। इन लोगों ने भोजन के अभाव में निकट के खेतों से केकड़ों को पकड़ कर खा लिया था। इन खेतों में विषैले रसायनों का लगातार छिड़काव हो रहा था। केकड़ों को खाने के बाद ही इन लोगों को लकवा मार गया। ऐसी ही एक बड़ी दुर्घटना उत्तर प्रदेश के लखीमपुर खीरी जिले में हुई जहां लगभग 250 लोग एक रहस्यमय बीमारी के शिकार हो गये। इस बीमारी से केंद्रीय स्नायु तंत्र को क्षति पहुंची जिससे इन लोगों में लकवे की सी स्थिति उत्पन्न हो गयी। इस बीमारी का मुख्य कारण यह था कि इन लोगों ने खाद्य भंडारों में प्रयुक्त होने वाले रसायनों से उपचारित अन्न का प्रयोग किया था।

उक्त दुर्घटनाओं ने स्पष्ट कर दिया कि कीटनाशकों का इस्तेमाल घातक है। कीटों में रासायनिक कीटनाशकों के प्रति प्रतिरोध की क्षमता उत्पन्न होने से यह स्पष्ट हो गया कि भविष्य में इन कीटनाशकों के बलबूते कीटों पर नियंत्रण नहीं किया जा सकता है। आंध्र प्रदेश के गुंटुर और प्रकाशम जिले में कीटनाशकों के प्रयोग के बावजूद कीटों के प्रकोप से फसलों को इतना नुकसान हुआ कि अनेक किसानों ने आत्महत्या कर ली।

हमारे वैज्ञानिक उक्त दुर्घटनाओं, समस्याओं और दुष्परिणामों के कारण रासायनिक कीटनाशकों के प्रभावी किंतु निरापद विकल्प ढूंढने की कोशिश कर रहे हैं। इस कोशिश से समन्वित "कीट प्रबंधन (इंटीग्रेटेड पेस्ट मैनेजमेंट : आई. पी. एम.) और जैविक कीट नियंत्रण जैसी अवधारणाओं का जन्म हुआ। इनका उद्देश्य कीटनाशकों का उपयोग अंधाधुंध न करके परिस्थितियों के अनुसार करना तथा कीट नियंत्रण के अन्य उपायों को अपनाना है। आई. पी. एम. के तहत कीट नियंत्रण के लिए जैविक, सामाजिक सांस्कृतिक और यांत्रिक उपायों को अपनाया जाता है। कीटों के जैविक नियंत्रण में परजीवियों, परभक्षियों और कीटों के प्राकृतिक शत्रुओं का इस्तेमाल किया जाता है।

कीटनाशकों के तात्कालिक और दूरगामी दुष्प्रभावों के मद्देनजर विश्व भर में कीटनाशकों के प्रयोग सीमित करने का अभियान चल रहा है। अमरीका जैसे विकसित देशों के साथ-साथ मलयेशिया और बंगला देश जैसे विकासशील देशों में अनेक विषैले कीटनाशकों के प्रयोग पर प्रतिबंध लगा दिया गया है तथा आई. पी. एम. के कार्यक्रम शुरू किये गये हैं जिससे कीटनाशकों की खपत में कम से कम एक तिहाई की कमी आयी है और कृषि पैदावार में 20 प्रतिशत की वृद्धि हुई है।

अमरीकी सूचना सेवा की विज्ञान पत्रिका "साइंस अपडेट"

के अनुसार अमरीका के केलिफोर्निया राज्य तथा कनाडा के क्यूबेक और ओंटारियां प्रांत में सन् 2000 तक कीटनाशकों के प्रयोग में 50 प्रतिशत की कमी लाने के लक्ष्य के तहत कीटनाशक नियंत्रण के लिए कार्यक्रम शुरू किये गये हैं। स्वीडन को तो इस दिशा में उल्लेखनीय सफलता मिल चुकी है। वहां 1986 की तुलना में 1990 में कीटनाशकों की खपत में 47 प्रतिशत की कमी हुई, स्वीडन की सरकार ने 1997 तक कीटनाशकों के प्रयोग में 50 प्रतिशत की और कमी लाने का लक्ष्य रखा है। डेनमार्क और नीदरलैंड में भी कीटनाशकों की खपत में कमी लाने के लिए ऐसे ही कार्यक्रम शुरू किये गये हैं। विकासशील देश इंडोनेशिया में एक ऐसी राष्ट्रीय नीति बनायी गयी है जिसके तहत वहां 1986 के बाद से कीटनाशकों के प्रयोग में 60 प्रतिशत की कमी आयी है।

कीटनाशकों के दुष्प्रभावों के मद्देनजर भारत सरकार ने कई कीटनाशकों के प्रयोग पर प्रतिबंध लगा दिया है। कृषि सचिव डॉ. एम. एस. गिल के अनुसार भारत में 31 दिसंबर 1992 तक 12 कीटनाशकों पर प्रतिबंध लगाया जा चुका था। डी डी टी सहित 13 कीटनाशकों के प्रयोग सीमित कर दिए गये हैं और 17 अन्य कीटनाशकों के बारे में विचार विमर्श जारी है। भारत में कुल मिलाकर 133 कीटनाशकों के नियमित प्रयोग के लिए पंजीकरण किया गया है तथा 19 कीटनाशकों का अस्थायी पंजीकरण किया गया है।

सन् 1972 के बाद से ही कीटनाशकों के इस्तेमाल पर प्रश्न चिन्ह लगने शुरू हो गये हैं। भारत और विदेशों में सरकारी और गैर-सरकारी अनुसंधान संस्थाओं और संगठनों ने 1972 के बाद से कीटनाशकों के इस्तेमाल के कारण उत्पन्न पेय व खाद विषाक्तता पर अनेक अध्ययन किये जिनसे पता चला है कि खाद्य पदार्थों में "एफलाटॉक्सिन" जैसे कैंसर जन्य फंग्स, बी एच सी (बेंजो हेक्सा क्लोराइड) और डी. डी. टी. जैसे विषैले कीटनाशक और आर्सेनिक कैडेमियन और लेड जैसी विषैली धातु मौजूद है जो खाद्य पदार्थों के माध्यम से शरीर में प्रवेश करती हैं, गाय, भैंस के दूध और भूमिगत पेयजल में भी कीटनाशकों के अंश के होने के सबूत मिले हैं।

चिकित्सा वैज्ञानिकों के अनुसार डी. डी. टी. की अत्यन्त अल्प मात्रा भी मानव शरीर पर घातक असर डाल सकती है। इससे हृदय की मांसपेशियों में आवश्यक एंजाइम के प्रवाह में अवरोध उत्पन्न होता है तथा यकृत कोशिकाओं का क्षय होने लगता है। अनेक अध्ययनों से पता चला है कि डी. डी. टी. महिलाओं में अचानक गर्भपात, कम वजन के बच्चे का प्रसव तथा प्रसव के बाद रक्तस्राव की आशंका को बढ़ाती है।

यही नहीं, कृषि पैदावार बढ़ाने में मददगार समझे जाने वाले रासायनिक कीटनाशक अब खेती के लिए ही खतरा बन गये हैं। रासायनिक कीटनाशों के छिड़काव से भूमि की उर्वरता घटती है, क्योंकि कीटनाशक न केवल मिट्टी में पाये जाने वाले प्राकृतिक खनिज लवण को भारी मात्रा में निकालते हैं बल्कि जैविक उर्वरक का काम करने वाले बैक्टरिया, फफूंद, केंचुओं और सूक्ष्म वनस्पतियों को नष्ट कर देते हैं। इसके अलावा ये कीटनाशक मधुमक्खियों और तितलियों जैसे परागकणों को स्थानांतरित करने वाले कीड़ों को नष्ट कर देते हैं।

कीटनाशकों के प्रयोग की एक विडम्बना यह है कि ये कीटनाशक अंततोगत्वा कीटों को बढ़ने में ही मदद करते हैं क्योंकि एक तो कीटों में कीटनाशक के खिलाफ प्रतिरोध क्षमता विकसित हो आती है दूसरा ये कीटनाशक चूहों परजीवियों और परभक्षकों जैसे कीटों के प्राकृतिक भक्षकों को नष्ट कर देते हैं।

कीटनाशकों के प्रयोग पर प्रतिबंध लगाकर कीट नियंत्रण के बेहतर विकल्प अपनाये जाने चाहिए। कीटों का जैविक नियंत्रण उक्त समस्याओं का बेहतर हल हो सकता है। जैविक नियंत्रण वास्तव में एक प्राकृतिक परिस्थिति उपाय है जिसको यदि हानिकारक कीटों के उन्मूलन में समुचित ढंग से व्यवहार में लाया जाए तब यह कीट नियंत्रण का एक स्थायी, सुरक्षित तथा कम खर्चीला साधन बन सकेगा।

भारत में नयी दिल्ली स्थित भारतीय कृषि अुनसंधान संस्थान (पूसा) तथा बैंगलूर स्थित जैविक नियंत्रण संस्थान में इस दिशा में व्यापक अनुसंधान चल रहे हैं। उम्मीद है कि इन अनुसंधानों की बदौलत जैविक नियंत्रण व्यावहारिक हो सकेगा और हमारे किसान इसे अपना सकेंगे।

दरअसल प्रकृति में कीटों के जैविक नियंत्रण की क्रिया अपने आप चलती रहती है, लेकिन यह इतनी धीमी होती है कि इनसे हानिकारक कीटों का सफल व पूर्ण नियंत्रण नहीं हो पाता है। अतः व्यवहारिक संदर्भ में कीटों के प्राकृतिक शत्रुओं के विवेकपूर्ण और सुनियोजित उपयोग को जैविक नियंत्रण कहते हैं।

वैसे एक प्रकार के कीटों के नियंत्रण के लिए दूसरे प्रकार के कीटों का उपयोग प्राचीन काल से ही किया जाता रहा है। इसकी उत्पत्ति संभवतः चीन में हुई, जहां सबसे पहले नींबू को नुकसान पहुंचाने वाले कीटों को मारने के लिए चीटियों का इस्तेमाल किया गया।

आधुनिक संदर्भ में जैविक नियंत्रण का उपयोग सर्वप्रथम अमरीका के केलिफोर्निया नगर में 1888 में अल्बर्ट कोवेले ने किया। उन्होंने आस्ट्रेलिया में पाये जाने वाले वीडेलिया भृंग अथवा लेडी बर्ड वीटिल नामक परभक्षी कीट का इस्तेमाल नींबू वर्ग के फलों को नुकसान पहुंचाने वाले कीट "कोटनी कुश्ल स्केल" के नियंत्रण में किया। तब से अब तक लेडी बर्ड बीटिल का प्रयोग 32 देशों में किया जा चुका है। जैविक नियंत्रण का कार्य 1927 में इंग्लैंड के "इम्पीरियल ब्यूरो ऑफ एंटमलॉजी" के अंतर्गत फार्नहेम प्रयोगशाला की स्थापना के बाद व्यवस्थित रूप से शुरू हुआ। यहां विभिन्न नाशक कीटों के प्राकृतिक शत्रुओं को खोजने का कार्य प्रारंभ हुआ। सन् 1940 में इसका कार्यक्षेत्र कनाडा हो गया तथा 1947 में यह सेवा "कामनवेल्थ ऑफ बायोलॉजिकल कंट्रोल" में बदल गई। इसका मुख्यालय ट्रिनीडाड़ (वेस्ट इंडीज) में है। इसके उपकेंद्र भारत, पाकिस्तान, मलयेशिया, युगांडा, अर्जेंटाइना, स्विटजरलैंड, पश्चिमी अफ्रीका तथा वेस्टइंडीज में हैं।

अपने देश में अब तक गन्ने के बेधक तथा पाइरीला धान के नाशक कीटों, कपास के नाशक कीटों, ज्वार तथा मक्का बेधक, नारियल के भृंग, माहू, चाय पर लगने वाले फ्लैशवर्म तथा चिचड़ियों (माइटस), एडलजिडस जंगलात के अन्य वृक्षों पर लगने वाले कीटों आदि के प्राकृतिक शत्रुओं का पता लगाया जा चुका है। इसके साथ-साथ इनका सफलतापूर्वक उपयोग भी किया गया है। इसके साथ ही देश के कई महत्वपूर्ण हानिकारक कीटों का नियंत्रण करने के लिए विदेशों से बहुत से विदेशी प्राकृतिक शत्रुओं को मंगाकर उनका उपयोग भी शुरू किया गया है।

81, समाचार अपार्टमेंट्स
मयूर विहार, फेज-I एक्सटेंशन
दिल्ली - 110091

बढ़ते हुए खर्च को ...
(पृष्ठ 28 का शेष)

लोगों की आवास समस्या को हल करने के लिए यह आवश्यक है कि अच्छी भवन निर्माण तकनीक को बढ़ावा दिया जाय। साथ ही कृषि तथा उद्योग से निकलने वाली बेकार वस्तुओं से तैयार कम कीमत की भवन निर्माण सामग्री को भी अपनाना आवश्यक है। इसके लिए फैक्ट्रियों के पास ही बाइ-प्रोडक्ट यूनिटों की स्थापना भी की जा सकती है। इससे बड़े आवास कार्यक्रमों को भी मदद मिलेगी और सस्ते तथा अच्छे मकान, लोगों को मिल सकेंगे। इस दृष्टि से उन्नत किस्म की भवन निर्माण सामग्री को बनाने के लिए आवास तथा शहर विकास निगम नई तकनीकों को बढ़ावा देने का प्रयास कर रहा है। साथ ही भवन निर्माण उद्योग को स्थापित करने के लिये वित्तीय सहायता भी दी जाती है इसके लिए हमारे देश में विभिन्न स्तरों पर अनेक वित्तीय संस्थाएं और बैंक सुविधा प्रदान कर रहे हैं।

भवन निर्माण हेतु राष्ट्रीय आवास बैंक के अतिरिक्त हमारे देश में कुल मिलाकर निम्नलिखित 18 मान्यता प्राप्त आवासीय वित्त संस्थान आर्थिक सुविधाएं प्रदान करते हैं:

1. हाउसिंग एंड अरबन डेवलपमेंट कापोरेशन लि. 2. हाउसिंग डेवलपमेंट फायनेंस कारपोरेशन लि. 3 कैन फिन होम्स लि. 4. दीवान हाउसिंग डेवलपमेंट फायनेंस लि. 5. एल. आई. सी. हाउसिंग फायनेंस लि. 6. इंडिया हाउसिंग फायनेंस एंड डेवलपमेंट लि. 7. गुजरात रुरल हाउसिंग फायनेंस का. लि. 8 पी. एन. बी. हाउसिंग फायनेंस लि. 9. एस. बी. आई. होम फायनेंस लि. 10. ए. बी. होम्स फायनेंस लि. 11. इंड बैंक हाउसिंग लि. 12. फेयरग्रोथ होम फायनेंस लि. 13. साया हाउसिंग फायनेंस क. लि. 14. अक्षय आवास निर्माण वित्त लि. 15. जी. आई. सी. गृह वित्त लि. 16. वैश्य बैंक हाउसिंग फायनेंस लि. 17. अपना घर वित्त लि. 18. पार्श्वनाथ हाउसिंग फायनेंस कारपारेशन लि.। इसके अतिरिक्त देश के अनुसूचित व्यावसायिक बैंक, अनुसूचित राज्य सहकारी बैंक, अनुसूचित शहरी सहकारी बैंक, राज्य सर्वोच्च सहकारी आवासीय वित्त समितियां तथा राज्य सहकारी कृषि व ग्रामीण विकास बैंक भी आवास के लिए सहायता उपलब्ध कराते हैं।

एच - 88 शास्त्री नगर
मेरठ (उ० प्र०)
पिन - 250005

सफलता की कहानी

युवा उद्यमी दिनेश बर्मन

सुमन शर्मा

इच्छा-शक्ति, हिम्मत और लगन, किस प्रकार जीवन को स्वावलंबी बनाती हैं और सपनों को मूर्तरूप दे सकती हैं, दिनेश चन्द्र बर्मन की कहानी इसका ज्वलंत उदाहरण है।

असम के नलबाड़ी जिले के गमारीमुड़ी गांव का निवासी श्री बर्मन पांचवी कक्षा से अधिक नहीं पढ़ पाया। नौकरी की तलाश में दस वर्ष पूर्व जब सोलह वर्षीय बर्मन उत्तरी लखीमपुर पहुंचा, तब उसके पास केवल पांच रुपये थे। लेकिन आज श्री बर्मन एक फर्नीचर की दुकान के मालिक हैं। उनके यहां 12 कामगार काम करते हैं। उनके अलावा एक गोदाम, एक मशीन शॉप और रहने के लिए एक छोटा-सा घर भी है। सब कुछ खर्च के बाद उसे लगभग 2,000 रुपये प्रतिमाह का मुनाफा हो जाता है। लेकिन 5 रुपये से 2000 रुपये के बीच श्री दिनेश की जीवन गाथा संघर्षों से भरी है। उसकी सफलता, लगन, उत्साह और कभी हार न मानने की उसकी प्रवृत्ति का परिणाम है।

जब दिनेश लखीमपुर आया तब उसके पास रुपया पैसा नहीं था। उसने चार वर्ष तक एक फर्नीचर की दुकान पर 350 रुपये प्रति माह की तनख्वाह पर काम किया। काम के साथ-साथ वह फर्नीचर बनाने के काम का प्रशिक्षण भी लेता रहा। इन्हीं वर्षों के दौरान उसके एक पड़ोसी ने, जो एक बैंक में कर्मचारी था, दिनेश को बैंक में थोड़ा बहुत पैसा हर महीने जमा करवाने की सलाह दी। उसने एक बैंक में अपना खाता खोला, पैसे जमा करवाता रहा।

एक दिन जब दुकान के मालिक से कहासुनी हो गयी तो दिनेश ने वहां काम छोड़ दिया। तब उसके मित्र ने उसे बैंक से ऋण लेकर अपनी दुकान शुरू करने की सलाह दी। दिनेश के पास उस समय तक 5000 रुपये बैंक में जमा थे। जिसके ऊपर उसने बैंक से 20,000 रुपये का ऋण लेकर गल्ला माल की दुकान खोली। गल्ला माल की दुकान चल नहीं पाई। अतः छह माह बाद उसने एक छोटी फर्नीचर की दुकान शुरू कर ली और उसने गल्ला माल की दुकान को बेच दिया और जो 4000 रुपये की राशि प्राप्त हुई उसे भी फर्नीचर की दुकान में लगा दिया।

लेकिन दिनेश के बुरे दिन सभी समाप्त नहीं हुए थे। 14 नवम्बर 1990 को उसकी फर्नीचर की दुकान में आग लग गयी और हजारों की सम्पत्ति जल कर राख हो गयी। कामगारों का समान भी देखते-देखते स्वाहा हो गया। दिनेश ने हार नहीं मानी। उसके पास केवल 500 रुपये की राशि शेष बची। उसने जिला उद्योग कार्यालय में ऋण के लिए पूछताछ की। पूरी छानबीन के बाद कार्यालय उसे 80,000 रुपये का कर्ज देने को तैयार हो गया। लेकिन दिनेश ने केवल 20,000 रुपये का ही ऋण लिया।

ऋण मिलने के बाद सबसे पहले उसने अपने कामगारों को कपड़े और अन्य जरूरत की वस्तुएं मुहैया कराईं। उसके बाद दुकान के लिए शेड बनवाया और रहने के लिए कच्चा घर लिया। उसकी दुकान का काम फिर से चल पड़ा। दिनेश इस स्थिति में पहुंच गया है कि वह अपने कामगारों को 600 रुपये से 1600 रुपये प्रति माह की दर से मजदूरी देता है। वह अनुभव से समझदार हो गया है और उसने आग जैसी दुर्घटना से बचाव के लिए अपनी दुकान का बीमा भी करा लिया है। अपने जीवन बीमा के अलावा कामगारों के बैंक में खाते भी खुलवा दिये हैं। वह नलबाड़ी में अपने घर में पिता को पैसा भी भेजता है।

दिनेश अपनी दुकान का विस्तार करने की योजना भी बना रहा है। उसे पूरी उम्मीद है कि वह अपनी लगन और परिश्रम से बाजार की प्रतियोगिता में ठहर सकेगा और अपने-सपने साकार कर सकेगा।

क्षेत्रीय प्रचार अधिकारी
उत्तरी लखीमपुर
असम

ग्रामीण महिलाओं की स्वास्थ्य दशाएं

डा. ए. एल. श्रीवास्तव

"स्वास्थ्य" मानव जाति की एक मौलिक आवश्यकता है। स्वास्थ्य सेवाओं को प्राप्त करने का प्रत्येक व्यक्ति को अधिकार है। स्वास्थ्य सेवाओं एवं सुविधाओं का उपभोग एवं रुग्णता से रक्षा महिलाओं के लिए अनेक कारणों से जरूरी है। इससे वे सामुदायिक जीवन में पूर्ण भाग ले पाती हैं तथा अपने जीवन स्तर में सुधार करती हैं। महिलाओं के लिए "अच्छा स्वास्थ्य" प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से समाज से सम्बन्धित होता है।

सामान्यतया स्वास्थ्य का तात्पर्य एक ऐसी दशा से है जिसमें व्यक्ति दैहिक, मानसिक एवं सामाजिक रूप से ठीक रहता है। मनुष्य में सिर्फ रोग अथवा व्याधि का अनुपस्थित रहना ही उत्तम स्वास्थ्य नहीं कहलाता। मनुष्य के स्वास्थ्य से सम्बन्धित सुधार कार्यक्रम सभी जगह समान रूप से न तो अमल में लाए जाते हैं और न ही उसका लाभ सब लोगों को समान रूप से मिलता है। साधारणतया महिलाएं जनसंख्या के उस वर्ग का प्रतिनिधित्व करती हैं जिन्हें स्वास्थ्य के क्षेत्र में विकास कार्यक्रमों का कम से कम लाभ मिल पाता है। नगरीय क्षेत्रों की महिलाएं तो फिर भी स्वास्थ्य कार्यक्रमों से लाभान्वित हो जाती हैं परंतु ग्रामीण क्षेत्रों की महिलाओं की दशा इस संदर्भ में बहुत दयनीय होती है। उनको भाग्य के सहारे जीना हैं और उसी के सहारे दम तोड़ना है। उनकी गिरती स्वास्थ्य दशा के लिए स्वास्थ्य कर्मियों एवं उससे सम्बन्धित दशाएं बहुत ही जिम्मेदार हैं। ग्रामीण क्षेत्रों की महिलाओं को गर्भाधान के पूर्व एवं उपरांत विशेष प्रकार की स्वास्थ्य सुविधाओं की आवश्यकता होती है जिसे वे साधारणतया प्राप्त नहीं कर पाती हैं। ये महिलाएं कुपोषण की भी शिकार होती हैं। कभी-कभी यह कुपोषण उनके लिए जानलेवा भी हो जाता है। अगर स्वास्थ्य सुविधाओं के अभाव के कारण उनकी असामयिक मृत्यु हो जाती है तो इसे बड़े सहज भाव से लिया जाता है। इसे एक सार्वभौमिक सत्य मानकर विवेचना का विषय नहीं बनाया जाता। इस प्रकार कहा जा सकता है कि ग्रामीण अंचलों में साधारणतया महिलाओं के स्वास्थ्य की स्थिति बहुत ही खराब है।

सामान्य स्वास्थ्य, स्वास्थ्य सेवाओं के तीन पक्षों, निदानात्मक, निवारक एवं प्रगतिमूलक से सम्बन्धित है। महिलाओं के स्वास्थ्य की विवेचना में स्वास्थ्य के उपर्युक्त तीनों पक्षों का मूल्यांकन आवश्यक है। निदानात्मक पक्ष के अंतर्गत रोग एवं व्याधि के निदान की बात की जाती है। निवारक पक्ष के अंतर्गत उन स्वास्थ्य सेवाओं का विश्लेषण किया जाता है जिससे संक्रामक एवं परजीवी रोगों से रक्षा की जा सके। महिलाओं के संदर्भ में जब इन स्वास्थ्य सेवाओं का मूल्यांकन किया जाता है तो यह स्पष्ट होता है कि प्रसव के कारण उन्हें कुछ विशेष प्रकार की स्वास्थ्य सुविधाओं की आवश्यकता होती है तथा परिवार नियोजन के विभिन्न पक्षों एवं सुविधाओं से उन्हें अवगत कराना आवश्यक प्रतीत होता है। उन्हें समय-समय पर पोषाहार वस्तुओं, स्वच्छता आदि के विविध आयामों से अवगत कराने की भी आवश्यकता है।

महिलाओं की स्वास्थ्य दशाओं का यथार्थ रूप प्राप्त करने के लिए पूर्वांचल ग्रामीण क्षेत्रों का सर्वेक्षण करने से अनेक महत्वपूर्ण तथ्य प्रकाश में आए हैं। यद्यपि पूर्वांचल को विकसित करने का प्रत्येक सार्थक प्रयास किया जा रहा है तथापि यह सिर्फ सैद्धान्तिक बनकर रह गया है। उसका व्यावहारिक पक्ष आज भी बहुत कमजोर है। इस क्षेत्र की महिलाओं के रोग से ग्रसित होने के तथ्य को जानने के लिए दो स्रोतों का विशेष रूप से उपयोग किया गया है। प्रथम स्रोत के अंतर्गत महिलाओं से प्रश्न किया गया कि वे अधिकांश किस रोग से पीड़ित हैं? द्वितीय स्रोत के अंतर्गत निकट के उन चिकित्सकों का साक्षात्कार किया गया जिनके पास महिलाएं निदान हेतु जाती हैं। अधिकांश महिलाओं ने बताया कि वे सिर दर्द, तपेदिक, हड्डी के जोड़ों का दर्द, रात्रि अंधत्व, दांत-दर्द, चर्म रोगों जैसे दाद, खुजली आदि से पीड़ित हैं। एक चौंकानेवाला तथ्य वह है कि प्रत्येक 11 महिलाओं के झुंड में एक दो महिलाएं भूत-प्रेत की बाधाओं अथवा जादुई रोग से किसी न किसी प्रकार से पीड़ित हैं। यद्यपि भूत-प्रेत से संबंधित व्याधियों को आधुनिक चिकित्सा के शब्दों में रोग नहीं कहा जाता तथापि इस प्रकार के रोग के प्रार्दुभाव की अनदेखी भी नहीं की जा सकती।

उपर्युक्त विश्लेषण से यह भलीभांति स्पष्ट हो जाता है कि इन रोगों के अंतराल में किसी न किसी रूप में कुपोषण एवं पौष्टिक पदार्थों के उपभोग का अभाव है। महिलाओं को रोग से ग्रसित होने के उपरांत भी उनका तब तक सार्थक इलाज नहीं कराया जाता जब तक रोग अपनी घातक अवस्था में न पहुंच जाय। गांवों के

चिकित्सक अटकलबाजी में इलाज करके अनेक समस्याओं को खड़ा कर देते हैं।

महिलाओं के बीमार होने पर उनके निदान की भी समस्या खड़ी होती है। अधिकांश महिलाओं का ऐसा मत है कि वे किसी विशिष्ट प्रकार के निदान को नहीं चाहती। वह प्रतीक्षा करती हैं कि रोग अपने आप ठीक हो जाय। अगर निदान कराना ही चाहती हैं तो अंग्रेजी दवाओं जैसे टिकिया, सिरप आदि पीकर ठीक हो जाना चाहती हैं। ऐसी महिलाएं जो निदान नहीं कराती वे "खर बिरैया" अर्थात् जड़ी बूटियों का सेवन करके ठीक हो जाना चाहती हैं।

घातक रोगों से ग्रसित होने पर वे प्राइवेट चिकित्सकों के पास जाकर इलाज कराना चाहती हैं। सरकारी चिकित्सा केंद्रों तथा चिकित्सकों की अपेक्षाकृत वे प्राइवेट चिकित्सकों से इलाज कराना ठीक समझती हैं। इससे उनके रोग पर पर्दा भी पड़ा रहता है तथा बहुत सी ऐसी बातें हैं जिसे वे सभी के सामने कहना भी नहीं चाहती। गांवों में महिलाओं के लिए रोग भी कम रहस्य का विषय नहीं होता। ग्रामीण महिलाओं के अनुसार वह रहस्य क्या जिस पर से पर्दा हट जाए।

आधुनिक चिकित्सा के क्षेत्र में प्रतिदिन कुछ न कुछ आविष्कार होते रहते हैं। इस बात का प्रयास किया जाता है उससे अधिक से अधिक लोग लाभान्वित हों। परंतु गांव की महिलाओं का तो नजरिया ही कुछ और है। गांव की महिलाएं "ईश्वरीय अनुकम्पा" के आगे आधुनिक चिकित्सा के प्रभाव को स्वीकार नहीं करती। इन महिलाओं का आधुनिक चिकित्सा में कम विश्वास है। उनका ऐसा मत है कि इससे जीवन की रक्षा नहीं होती। जीवन की रक्षा तो ईश्वरीय शक्ति से होती है।

रोग के कारणों के प्रति ग्रामीण महिलाओं का अपना ही नजरिया है। रोग के कारणों में पारलौकिक शक्तियों का प्रभाव विशेष रूप से देखने को मिलता है। आज भी ग्रामीण क्षेत्रों में अधिकांश महिलाओं का प्रसव घर पर ही होता है। प्रसव-काल में यदि कुछ घटना हो जाती है तो उसे देवी-देवताओं की कुदृष्टि का परिणाम मान लिया जाता है। गांव की महिलाएं अपने निदान के लिए चिकित्सालय जाती भी हैं तो पुरुष चिकित्सक से अपना निदान नहीं कराती। यदि महिलाएं गर्भवती हैं तो किसी कीमत पर पुरुष चिकित्सक से जांच के लिए तैयार नहीं होती।

धन का संकट एवं गांव से चिकित्सालय की दूरी आदि ऐसी कठिनाइयां हैं जिसके कारण महिलाएं अपना सही ढंग से इलाज नहीं करा पाती हैं। गांव की महिलाएं चिकित्सा एवं निदान में लड़कियों की अपेक्षा लड़कों को अधिक महत्व देती हैं।

ग्रामीण महिलाओं के स्वास्थ्य से संबंधित तथ्यों का विश्लेषण करने से स्पष्ट होता है कि उन्हें संतुलित आहार तो प्राप्त होता ही नहीं। जो भोजन उन्हें प्राप्त होता है उससे उनकी भूख तो शांत हो जाती है परंतु भोज्य पदार्थ से जो ऊर्जा उन्हें प्राप्त होनी चाहिए वह नहीं प्राप्त होती। घर में भोजन बनने के बाद पहले पुरुष एवं लड़कों को भोजन कराया जाता है। फिर लड़कियों व महिलाओं को। इस प्रकार जो कुछ बचा खुचा भोजन उनके हिस्से आता है इसी से पेट भरती हैं और महिलाएं पौष्टिक भोजन से लाभान्वित नहीं होतीं।

ग्रामीण क्षेत्रों मे पीने का पानी अशुद्ध है। यहां पर महिलाओं को कुंआ, तालाब आदि के पानी पर निर्भर होना पड़ता है जो धूल एवं गंदगी से भरा रहता है। अधिकांश महिलाएं मिट्टी के घरों में रहती हैं। इन घरों में परिवार के सदस्यों को संख्या के आधार पर कमरों को संख्या कम होती है। इसका परिणाम यह होता है कि कमरों में सदस्यों की अधिक भीड़ होती है। मकानों में मौलिक सुविधाओं का भी अभाव होता है। परिणामस्वरूप महिलाएं अभावयुक्त परिस्थितियों में रहते हुए अनेक प्रकार के रोगों से ग्रसित हो जाती हैं।

ग्रामीण महिलाएं अपनी क्षमता से अधिक काम करती हैं। कार्य के अनुपात में उन्हें अपर्याप्त पौष्टिक आहार मिलता है जिसका परिणाम यह होता है कि वे विविध प्रकार के घातक रोगों से ग्रस्त हो जाती हैं। इससे उनके जीवन के समक्ष अनेक प्रकार के प्रश्न खड़े हो जाते हैं जिसका उत्तर न तो उनके पास है और न तो समाज के कर्णधारों के पास।

प्रोफेसर, समाजशास्त्र, विभाग
काशी हिंदू विश्वविद्यालय,
वाराणसी (उत्तर प्रदेश)

ग्रामीण विकास में औद्योगिक नगरों का योगदान : भिलाई, एक अध्ययन

✍ डा० अजय श्रीवास्तव एवं डा० रमेश चन्द सिंह

औद्योगिक नगरों का अपने समीपवर्ती ग्रामीण क्षेत्रों से घनिष्ठ संबंध होता है। ये नगर अपने क्रियाकलापों से समीपस्थ ग्रामीण अंचलों को काफी प्रभावित करते हैं। नगर जहां एक ओर ग्रामीण क्षेत्रों से खाद्य पदार्थ, फल फूल, दूध आदि प्राप्त करता है, वहीं बदले में दैनिक उपयोग की वस्तुएं, आधुनिक सुख-सुविधा के सामान, वस्त्र, समाचार-पत्र और शिक्षा व स्वास्थ्य आदि की सेवाएं मुहैया कराता है। देश में औद्योगिकरण के चलते नगरीकरण में वृद्धि हो रही है। फलतः समीपवर्ती ग्रामीण क्षेत्रों का तीव्र गति से अधिग्रहण हो रहा है क्योंकि बढ़ती हुई आबादी के लिए आवासीय समस्या नगर प्रशासन के लिए चुनौती बन कर खड़ी है। औद्योगिक क्षेत्रों के समीपवर्ती अधिग्रहित ग्रामीण क्षेत्रों में कॉलोनियों का निर्माण आवासीय समस्या के निदान के लिए ही हो रहा है। भारतीय उद्योगों के तीव्र विकास के लिए सन् 1956 में जिस औद्योगिक नीति की घोषणा की गयी थी उसके मूल में प्राकृतिक एवम् मानवीय सम्पदा से भरपूर ग्रामीण क्षेत्रों का विकास ही था। इस औद्योगिक नीति में आर्थिक रूप से पिछड़े आदिवासी क्षेत्रों एवम् कोयला व लौह से समृद्ध भागों के विकास पर विशेष बल दिया गया। भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पं० जवाहरलाल नेहरू के प्रयास से द्वितीय पंचवर्षीय योजना काल में ग्रामीण उत्थान हेतु भिलाई, बोकारो और दुर्गापुर लौह-इस्पात संयंत्रों की स्थापना ग्रामीण अंचलों में ही की गयी। साथ ही इन इस्पात संयंत्रों में समीपवर्ती ग्रामीण क्षेत्रों के निवासियों को नौकरी में प्रधानता देने का भी प्रावधान रखा गया। विभिन्न औद्योगिक केंद्रों यथा बोकारो, दुर्गापुर, रऊरकेला, भिलाई, जमशेदपुर आदि के समीपस्थ ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा, स्वास्थ्य, सड़क निर्माण, पेयजल व व्यावसायिक सुविधाएं इन औद्योगिक केंद्रों के चलते ही उपलब्ध हो सकी है। ग्रामीण अंचल को सम्पन्न, खुशहाल व हरा-भरा बनाये रखने में भिलाई इस्पात संयंत्र की अपनी एक महत्वपूर्ण भूमिका है। प्रस्तुत लेख में भिलाई लौह इस्पात केंद्र द्वारा उसके समीपवर्ती ग्रामीण क्षेत्रों के विकास के लिए किये गये प्रयासों का संक्षिप्त वर्णन है।

भिलाई इस्पात नगर

भारत-सोवियत रूस के तकनीकी और आर्थिक सहयोग पर आधारित भिलाई मध्य प्रदेश के दुर्ग जिले में स्थित छत्तीसगढ़ अंचल का प्रमुख औद्योगिक केंद्र है। पं० जवाहरलाल नेहरू के प्रयास से 2 फरवरी सन 1955 को दोनों देशों ने वर्तमान आधुनिक 'तीर्थस्थल' की स्थापना के लिए एक समझौते पर हस्ताक्षर किये। भिलाई नगर के विकास का मुख्य केंद्र बिंदु 'भिलाई स्टील प्लांट' (बी. एस. पी.) है। संयंत्र से कुछ दूर बहती शिवनाथ एवम् खारून नदियों से पर्याप्त जल मिल जाता है। लौह इस्पात हेतु उपयुक्त सम्पूर्ण कच्चा माल (कोयले को छोड़कर) 250 किलोमीटर के अंतर्गत उपलब्ध है। लौह-अयस्क मात्र 90 किलोमीटर की दूरी पर राजहरा खदान समूह से प्राप्त हो जाता है। मैंगनीज बालाघाट और नागपुर से, चूना पत्थर नंदिनी और कटनी से तथा कोयला बिहार व पं० बंगाल से सुलभतापूर्वक प्राप्त हो जाता है। भिलाई इस्पात संयंत्र मुख्यतः कोक, पिग आयरन, क्रूडस्टील, प्लेट, ब्लूमस, विलेट, रेल तथा स्लैब का उत्पादन करता है। इसके लिए संयंत्र में ही एक दूसरे से सम्बद्ध मिलों की स्थापना की गयी है। संयंत्र में कुछ सहायक उत्पादों का भी उत्पादन होता है यथा तार, अमोनियम सल्फेट, बेंजोल उत्पाद तथा ग्रेनुलेटेड स्लैग। संयंत्र की 44 सहायक उद्योगों को भी पंजीकृत किया है जो कारखाने की मांग के अनुकूल वस्तुएं तैयार करते हैं। उल्लेखनीय है कि समीपस्थ ग्रामीण क्षेत्रों के विकास में इन उद्योगों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। सिम्प्लेक्स इंजीनियरिंग एवं फाउन्डरी कंपनी की स्थापना 1957 में सुपेला में हुई। हिम्मत स्टील इंडस्ट्री तथा धरमसी मोरार कंपनी की स्थापना क्रमशः सन् 1960 एवं 1961 में कुम्हरी गांव में हुई जबकि ए० सी० सी० की स्थापना जामुल गांव में तथा भिलाई रिफ्रेक्टरी प्लांट की स्थापना नेवई गांव में क्रमशः सन् 1964 तथा 1980 में हुई। इन उद्योगों के कार्यरत कर्मचारियों के आवास, स्वास्थ्य, शिक्षा, मनोरंजन आदि सुविधाओं के विकास से समीपस्थ ग्रामीण अंचलों का उत्थान हो रहा है। संयंत्र ने अपने कर्मचारियों तथा संयंत्र पर अप्रत्यक्ष रूप से आश्रित गैर-कर्मचारियों

के सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक, शारीरिक व सांस्कृतिक उत्थान के लिए नगर प्रशासन संगठन के अंतर्गत 3 जुलाई, 1963 को "सामुदायिक विकास विभाग" की स्थापना की। तालिका 1 में समीपवर्ती ग्रामीण अंचलों में स्थापित उद्योगों का विवरण दिया गया है।

प्रक्रिया हेतु चुना गया। इन गांवों से गरीबी दूर करने हेतु प्राथमिक सुविधाओं यथा शिक्षा, स्वास्थ्य, पेयजल, परिवहन और लोक-कलाओं के विकास पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। इन समीपवर्ती ग्रामों के विकास हेतु अब तक 30 लाख से अधिक रुपये खर्च किये जा चुके हैं।

तालिका 1 : समीपवर्ती ग्रामीण अंचलों में स्थापित उद्योगों का विवरण

उद्योग	स्थापित स्थल (गांव का नाम)	स्थापना वर्ष	कार्यरत व्यक्ति
भिलाई इस्पात संयंत्र	भिलाई गांव	1957	63619
भिलाई रिफ्रेक्टरी प्लांट	नेवई गांव	1980	1605
ए. सी. सी.	जामुल	1964	2300
सिम्पलेक्स इंजीनियरिंग एवं फाउंडरी कंपनी	सुपेला	1957	576
भिलाई इंजीनियरिंग कारपोरेशन	नंदिनी रोड औद्योगिक आस्थान	1960	740
हिम्मत स्टील फाउंडरी	कुम्हरी	1960	800

ग्रामीण विकास

भिलाई इस्पात संयंत्र के कार्यक्षेत्र में ग्रामीण विकास को 1978-79 में जोड़ा गया। समीपवर्ती गांवों के विकास के लिए शिक्षा, पेयजल, स्वास्थ्य और सड़क मार्ग संबंधी सुविधाएं उपलब्ध कराने के लिए एक योजना तैयार की गई। प्रारंभ में नगर क्षेत्र के 8 किलोमीटर की परिधि में आने वाले 31 गांवों को इस योजना हेतु चुना गया परंतु बाद में 16 किलोमीटर की परिधि में आने वाले 137 ग्रामों को योजना के अंतर्गत शामिल किया गया। सर्वप्रथम चेटुवा और मोहदी पहडोर नामक ग्रामों को विकास

शिक्षा सुविधा

भिलाई इस्पात संयंत्र में "सामुदायिक विकास विभाग" ने शिक्षा को प्राथमिक आवश्यकता मानते हुए बाल-शिक्षा एवं प्रौढ़-शिक्षा पर विशेष बल दिया है। विभाग ने 10 हजार से अधिक व्यक्तियों को साक्षर बनाया है। महिलाओं के विकास के लिए प्रौढ़ महिला केंद्र संचालित है जबकि शिक्षा प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों को साक्षर बनाने से लेकर हाईस्कूल तक की शिक्षा दी जाती है। तालिका 2 में विभिन्न स्तर के शिक्षा केंद्रों में दर्ज व्यक्तियों की संख्या दी गई है।

तालिका 2 : विभिन्न स्तर के शिक्षा केंद्रों से दर्ज संख्या

स्तर	केम्प-1	केम्प-2	खुर्सीपार	अस्पताल सेक्टर	नंदिनी	कुल
बालमंदिर	219	200	222	—	—	641
प्रौढ़शिक्षा	57	28	30	11	35	161
प्राथमिक स्तर	47	30	31	5	28	141
उ० मा० शाला स्तर	171	147	—	—	32	350
	494	405	283	16	95	1293

स्वास्थ्य सुविधा

भिलाई नगर के 5 किलोमीटर परिधि में बसे लगभग 50 गांवों के बच्चों को रक्षात्मक प्रतिरोधण सेवा के लिए चुना गया। लगभग दो दर्जन ग्रामों में डिप्थीरिया, काली खांसी, टिटनेस तथा पोलियो से बचाव हेतु रक्षात्मक प्रतिरोधण उपाय किये गये हैं। समय-समय पर स्वास्थ्य संबंधी जानकारी के लिए चलचित्र प्रदर्शनी का भी आयोजन होता रहता है। संयंत्र के पास अपने नौ गतिमान चिकित्सालय है और ग्रामीण क्षेत्रों में निःशुल्क नेत्र शिविर का आयोजन किया जाता है। साथ ही रोग निरोधक टीके लगाने का कार्यक्रम भी सम्पन्न किया जाता है। सामुदायिक विकास विभाग के अनुसार पिछले एक दशक में नवजात शिशुओं की मृत्युदर प्रति 1000 बच्चों पर 67 से घटकर 27 रह गयी है और सामान्य मृत्युदर 5 से 3 हो गयी है। रोग प्रतिरोधक टीकों के परिणामस्वरूप यह संभव हो सका है। प्रतिवर्ष समाज शिक्षिकाओं द्वारा स्वस्थ्य शिशु प्रतियोगिता का आयोजन कर शिशुओं के स्वास्थ्य व रख-रखाव के बारे में गृहणियों को महत्वपूर्ण जानकारी दी जाती है।

व्यवसाय

ग्रामीण क्षेत्रों से गरीबी हटाने तथा रोजगार के अवसर जुटाने के लिए अनेक योजनायें संचालित हैं। इस दिशा में ग्राम कुटेला भाटा में अनुसंधान केंद्र के रूप में एक आदर्श फार्म स्थापित किया गया है। इस फार्म में मत्स्य पालन, मुर्गी पालन, पशु पालन और कृषि के उन्नत तथा वैज्ञानिक तरीकों के अन्वेषण पर ध्यान दिया जाता है। समीपस्थ ग्रामों में इसका प्रचार - प्रसार व प्रशिक्षण भी दिया जाता है।

ग्रामीण विकास में लघु उद्योगों का विशेष महत्व है क्योंकि इस प्रकार के उद्योगों द्वारा रोजगार के अधिकतम अवसर उपलब्ध कराये जा सकते हैं। इस संदर्भ में भिलाई इस्पात संयंत्र, गांवों में लघु उद्योगों को बढ़ावा देने के लिए बुक बाइडिंग सेंटर, कुर्सी बुनाई केंद्र, दस्ताना निर्माण केंद्र तथा सिलाई प्रशिक्षण आदि का संचालन नियमित रूप से कर रहा है। संयंत्र अपने कार्यालयों के प्रयोग में आने वाली वस्तुओं जैसे रजिस्टर,फाइल-बोर्ड, फ़ाइल कवर, नोट बुक व लिफाफे आदि का निर्माण ग्रामीण अंचलों में स्थापित इन्हीं बुक बाइडिंग सेंटरों से करवाता है। महिलाएं कुर्सी बुनाई तथा हाथ के दस्तानों का भी निर्माण करती हैं। समीपस्थ ग्रामों के लोग भिलाई इस्पात संयंत्र में गैर-तकनीकी पदों पर कार्यरत हैं। इसके अतिरिक्त बड़ी संख्या में लोग अप्रत्यक्ष रूप से जैसे अपना व्यवसाय स्थापित कर भी लाभान्वित हो रहे हैं।

परंपरागत लोक कला एवं संस्कृति का विकास

संयंत्र ग्रामीण अंचल की समृद्ध सांस्कृतिक परंपराओं तथा लोक कलाओं के संरक्षण और विकास के लिए उल्लेखनीय कार्य कर रहा है। विगत दो दशकों से प्रतिवर्ष भिलाई इस्पात संयंत्र 'छत्तीसगढ़ लोक कला महोत्सव' में छत्तीसगढ़ क्षेत्र के कोने - कोने से आमंत्रित कलाकारों द्वारा आकर्षक लोक गीत, नृत्य व संगीत के आकर्षक कार्यक्रम प्रस्तुत किये जाते हैं। भिलाई का यह सबसे बड़ा सात दिवसीय सांस्कृतिक समारोह है। अब इस 'महोत्सव' की ख्याति देश के सबसे बड़े लोकोत्सव के रूप में हो चुकी है। पंथी नर्तक देवदास व पंडवानी गायिका तीजन बाई के अतिरिक्त लालूराम, मदन लाल, झांडू राम देवागन, हबीब तनबीर आदि कलाकार राष्ट्र की भौगोलिक सीमा को लांघकर सुदूर देशों में भी अंचल की गौरवमयी लोक कला और संस्कृति की पताका फैला चुके हैं। फ्रांस में सम्पन्न हुए 'भारत महोत्सव' में पंडवानी गायिका

तीजन बाई तथा पंथी नर्तक देवदास के दल ने अपने प्रदर्शन से अंचल, प्रांत व राष्ट्र को ख्याति में चार चांद लगाये हैं। यह दल ब्रिटेन, पूर्वी जर्मनी, फ्रांस, रूस, इटली एवम् यूरोप के अनेक देशों में भी अपनी कला का प्रदर्शन कर चुका है।

उपसंहार

इस प्रकार हम देखते हैं कि औद्योगिक नगरी भिलाई द्वारा संचालित होने वाले क्रियाकलापों ने न केवल ग्रामीण जनों की आजीविका के लिए नया मार्ग प्रशस्त किया है वरन् राष्ट्र की विकास यात्रा में ग्रामजनों को भी सहभागी बनाया है। संयंत्र समीपवर्ती ग्रामों में विकास योजनाओं का तत्परता से क्रियान्वयन कर एक ओर जहां ग्रामवासियों के उत्थान के लिए हर संभव प्रयास कर रहा है, वहीं दूसरी ओर सांस्कृतिक धरोहरों को सुरक्षित रखते हुए लोककलाओं की परंपरा के विकास हेतु सपूर्ण देश में अपने ढंग की अनूठी पहल प्रारंभ कर चुका है। फलतः सदियों से उपेक्षित व पिछड़ा छत्तीसगढ़ अंचल अब इतिहास का पड़ाव नहीं अपितु एक मंजिल, एक आदर्श, एक अनुकरणीय उदाहरण व एक विशिष्ट औद्योगिक जीवन शैली के रूप में प्रतिष्ठित हो चुका है।

221, डालमिया छात्रावास,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,
वाराणसी - 221005

गाय के सींग में खाद का कारखाना

किशोरी चौधरी,

उपरोक्त शीर्षक पढ़कर चौंकना लाजमी है परंतु इसे आजमाकर करके देखने में क्या हर्ज है? प्रक्रिया सीधी सी है। दुधारू गाय का सींग (मरणोपरांत) लेकर उसमें जीवित दुधारू गाय का गोबर भरकर डेढ़ फीट जमीन के अंदर माह सितम्बर - अक्तूबर में गाड़ दिया जाता है। फिर उसे छः माह बाद यानि मार्च-अप्रैल में निकाल लिया जाता है। छः माह के उपरांत गाय के सींग वाले गोबर इतने सघन पोषक तत्वों वाली खाद में तब्दील हो जाता है कि मात्र 35 ग्राम हिस्सा एक एकड़ की खाद पूर्ति कर सकता है। इस खाद को खेतों में प्रयोग करने के लिये इसे पानी में घोला जाता है। इस खाद की ताकत को बढ़ाने के लिये पहले इसे पानी में घड़ी की तरफ तथा दूसरी बार घड़ी के विपरीत लगभग एक घंटे तक घुमाना पड़ता है। इस घुली खाद को खेत में छिड़कने के बाद रासायनिक खाद की आवश्यकता न्यून हो जाती है। इसे ही कहते हैं बायोडाइनेमीक कृषि। इसकी अवधारणा एक दम नयी नहीं है। परंतु वैज्ञानिक खोज का श्रेय आस्ट्रेलिया के वैज्ञानिक और दार्शनिक डॉ. राडल्ट स्टेनर को जाता है जिन्होंने सर्वप्रथम इसका प्रयोग 1924 में किया था। हाल ही में पदम् श्री टी० जी० के० मैनन ने इस कृषि का सघन प्रशिक्षण लेकर न्यूजीलैंड से भारत आने पर यह जानकारी दी है।

भारतीयों का यह अंधविश्वास हो या झूठी गप्प कि मरणोपरांत गाय दान करने से गाय की पूंछ पकड़कर भवसागर से पार पाया जाता है परन्तु गाय के सींग पकड़कर खेती बाड़ी के संसार में नये मुकाम तक पहुंचा जा सकता है। यह सही है कि महाभारत काल से आज तक गाय न सिर्फ ग्रामीण अर्थव्यवस्था की केंद्र बिंदु रही है बल्कि भारतीय जनमानस में आस्था और विश्वास का केंद्र बिंदु रही है। इसके दूध-दही को अमृत माना गया है। दूसरी और उसके बछड़े खेती में हल एवं अन्य कामों के उपयोग में आते रहे हैं। गाय के गोबर की महत्ता तो अब पश्चिम में भी बढ़ेगी क्योंकि अमेरिका के एक खोजी व्यक्ति ने प्रयोग करके ऐसा जैविक पदार्थ निकाला है जिसमें दुधारू गाय के गोबर का उपयोग होता है। इसके पीछे गाय के चार जठरों में से एक जठर में पैदा होने वाले ऐसे जीवाणुओं का लाभ लिया गया है जो बिना ऑक्सीजन के काम करते हैं। यह पदार्थ खेती बागवानी की उपज बढ़ाने में लाजवाब है। इससे गंदे पानी के नालों और रासायनिक प्रदूषण से मुक्ति दिलाने में भी उपयोग किया जाता है। भारत में गाय के गोबर से अनेक प्रकार के उपयोग लिये जाते हैं। पश्चिम के वैज्ञानिक धीरे-धीरे इस बात को मानने लगे हैं। यह लेख हाल में अंगरेजी पत्रिका "स्पान" में छपे जेम्स फ्रांसीस मार्टिन के इस क्षेत्र में किये महान प्रयोगों के बारे में एक लेख पर आधारित है।

इस्लामपुर (नालंदा)
बिहार

मत्स्य पालन हेतु पुराने तालाब को उपयोगी कैसे बनायें

✍ डा. अमरेश चन्द्र पाण्डेय

हम सभी जानते हैं कि मछलियां जलीय जीव हैं जो कि क्लोम (गिल्सी) की सहायता से जल में घुलनशील आक्सीजन को प्राप्त करती हैं तथा सांस लेती हैं। मछलियां जल में ही प्रजनन करती एवं सम्पूर्ण जीवन व्यतीत करती हैं। इन्हीं विशेष गुणों के कारण इनको पालने के लिए तलाब, जलाशय, तड़ाग, झील आदि पर निर्भर रहना पड़ता है। यह प्रश्न अक्सर किया जाता है कि पुराने तालाब को मीन पालन के लिए किस प्रकार उपयोगी बनाया जा सकता है। यह लेख इसी समस्या के निराकरण हेतु प्रस्तुत किया जा रहा है। पुराने तालाबों को उपयोगी बनाने के लिए निम्नांकित प्रक्रियाएं आवश्यक हैं:

1. मरम्मत एवं तैयारी
2. मत्स्य बीज (अंगुलिका) संचय
3. कृत्रिम (पूरक) आहार
4. देखभाल एवं उत्पादन

तालाबों की मरम्मत एवं तैयारी

जैसे अच्छी फसल लेने के लिए किसान भाई खेत की तैयारी करते हैं, घास निकालते हैं, खाद देते हैं उसी प्रकार मत्स्य पालन से पहले पुराने तालाब की निम्न प्रकार से मरम्मत एवं तैयारी भी आवश्यक है:

1. तालाब की कटाई करके उसे चौकोर या आयताकार बनाना चाहिए तथा तलहटी को चिकना एवं समतल बना देना चाहिए। भीटे की मरम्मत करके जल आगम तथा निकासी के लिए नाली लगा देनी चाहिए। नालियों को सीमेंट की सहायता से पक्का बनाना तथा महीन तार की जाली लगानी चाहिए। जिससे अवांछनीय जीव जंतु तथा मछलियां अंदर प्रवेश न कर सकें एवं पाली जाने वाली मछलियां बाहर न जा सकें।
2. यदि तालाब सूखा हो (या सुखाया जा सके) तो मिट्टी के समुअंक (पी. एच.) की जांच निकटस्थ जनपदीय मत्स्य कार्यालय से करा लेनी चाहिए। यह सुविधा निःशुल्क प्राप्त है। इस कार्य के लिए तालाब के 4-5 स्थानों से मिट्टी (6 इंच गहराई से) निकाल कर मिला लेनी चाहिए। इसके बाद इसे छाया में सुखा कर बारीक चूरा बनाकर थैले या प्लास्टिक में बंद कर देना चाहिए। यदि सुखाना संभव हो तो जल के समूअंक की ही जांच करनी चाहिए।
3. सूखे तालाब में स्लेक्ड लाइम या चूना (कैल्शियम हाइड्राक्साइड) डालना चाहिए, चूने की मात्रा मिट्टी या जल के समूअंक पर निर्भर करती है (सारणी - 1) तालाब में जल कम से कम दो सप्ताह बाद ही भरना चाहिए। मछली के अच्छे विकास के लिए 7.0 - 7.5 समूअंक ठीक होता है।

सारणी - 1 चूने की मात्रा एवं समूअंक

समूअंक	प्रकार	चूने की मात्रा (कि० ग्रा०/हे०)
4.0 - 4.5	अति अम्लीय	1000
4.5-5.5	मध्यम अम्लीय	700
5.5-6.5	कम अम्लीय	500
6.5-7.5	लगभग न्यूट्रल	200

यदि तालाब को सुखाना संभव न हो तो भी क्विक लाइम या बूझा चूना (कैल्शियम आक्साइड) को तालाब में जल आगम की नाली के पास या जल की सतह पर डालकर प्रयोग करना चाहिए।

तालाब की तैयारी में चूना देना एक आवश्यक क्रिया है। इसके दो लाभ है : (क) तालाब की सफाई हो जाती है। (ख) साथ ही साथ उर्वरक में वृद्धि हो जाती है।

चूने के विषाक्त प्रभाव के कारण बैक्टिरिया और अन्य हानिकारक जीव जंतु नष्ट हो जाते हैं। यदि जल अम्लीय है या क्षारीय तत्व कम हैं तो चूना अवश्य डालना चाहिए। इससे अनावश्यक लौह समाप्त हो जाते हैं, समूअंक स्थिर हो जाता है और उसकी क्षारीयता बढ़ जाती है।

4. जलीय खरपतवार का विनाश भी अति आवश्यक है क्योंकि ये जल में प्राप्य खनिज, लवण, खाद्यपदार्थों, आक्सीजन का उपयोग करती हैं, स्थान घेरती हैं, तथा जाल चलाने

में व्यवधान उत्पन्न करती हैं।

जलीय पादप प्रजातियों को इस प्रकार नष्ट करना चाहिए कि पुनः न उग सके। आप्यका (एलगी) नियंत्रण हेतु बार-बार जाल चलाकर इसे निकाल देना चाहिए। नीला थोथा (कापरसल्फैट) का तनुघोल (1-2 पी० पी० एम०) आप्यकाओं को नष्ट कर देता है। जल पर तैरने वाले पौधों (जलकुम्भी, पिस्टिया आदि) को खींचकर या अन्य छोटी तैरने वाली वनस्पतियों में से लेम्ना, अजोला, वोलिफया इत्यादि को रस्सी या महीन जाल की सहायता से निकाला जा सकता है। निमग्न पादपों जैसे हाइड्रिला, सोरैटोफाइलम आदि को यथासंभव समूल नष्ट करना अच्छा होगा। इसके लिए कंटीलें तार की सहायता से इन्हें खींचना चाहिए।

5. पुराने तालाबों में उपस्थित अवांछनीय मीन प्रजातियां (डिड़वा, वंदा, टिकुली, सीधरी, चेला, सुहिया आदि) भोजन आक्सीजन एवं स्थान के लिए पाली जाने वाली मछलियों से होड़ करती हैं। अतः इनकी निकासी भी एक आवश्यक प्रक्रिया है। इसके अतिरिक्त अन्य मीन भक्षी मछलियां (सहरी, पहिना, बुल्ला आदि) पाली जाने वाली मछलियों को भी खा जाती हैं। इसके लिए कई बार जाल चलाकर यथा संभव इन्हें निकाल देना चाहिए। सबसे अच्छा तरीका है तालाब को सुखा देना। यदि यह संभव न हो तो महुआ की खली (2500 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर प्रति मीटर खड़े जल में) को जल में भिगोने के पश्चात जल की सतह पर छिड़क कर कई बार जाल चला देना चाहिए ताकि अच्छी प्रकार से जल में मिल जाए। इससे मछलियों को श्वास लेने में कठिनाई होती है और सतह पर आ जाती हैं तथा कुछ समय बाद मर जाती हैं। इन मछलियों को खाया या बेचा जा सकता है। इससे अतिरिक्त महुआ की खली खाद का भी काम करती है, जिससे जल में सूक्ष्म जीव (प्लवक) पैदा होते हैं जो पाली जाने वाली मछलियों का प्राकृतिक आहार हैं। इसी प्रकार ब्लीचिंग पाउडर (500 कि० ग्रा०/हे०) को जल में घोलने के बाद तालाब के सतह पर छिड़क कर जल में अच्छी तरह से मिला देते हैं। मरी हुई मछलियों को जाल की सहायता से निकाल कर खाया/बेचा जा सकता है। महुआ की खली का प्रभाव 15 दिन तथा ब्लीचिंग पाउडर का प्रभाव 5 दिनों तक रहता है। अतः इस अवधि के उपरांत ही मीन अंगुलिकाओं को तालाब में पालना चाहिए।
6. खादीकरण का भी एक महत्वपूर्ण स्थान है पुराने तालाब में विघटनकारी क्रियाओं के कारण पौष्टिक पदार्थों का निरंतर ह्रास होता है। सर्वाधिक मीन उत्पादन एवं उसके लिए जैविक उत्पादन बढ़ाने के लिए यह आवश्यक है कि तालाब में समय-समय पर खाद देकर उपजाऊ शक्ति को बढ़ाया जाये। तालाब को सुखाकर तल भूमि (तलहटी) पर पड़े पदार्थों को सक्रिय बना दिया जाता है। गोबर या बायोगैस स्तरी 10,000 - 15,000 किलोग्राम/हे० प्रति वर्ष की दर से तलहटी में मिलाना चाहिए। यदि सुखाना संभव न हो तो उपरोक्त मात्रा को जल में घोलकर दिया जा सकता है। इसके अतिरिक्त मुर्गी पालन क्षेत्र की खाद, हरी खाद, सुअर का मल-मूत्र आदि भी प्रयोग किया जा सकता है। खाद में यूरिया (15 कि० ग्रा०/हे० प्रतिमाह) तथा फास्फेट (20 कि० ग्रा०/हे० प्रतिमाह) का प्रयोग मीन पालन के बाद प्रति माह किया जाना चाहिए। उर्वरकों के प्रयोग के पश्चात जल में विभिन्न प्रकार के जंतु एवं पादप प्रचुर मात्रा में पनपने लगते हैं जिन्हें खाकर मछलियां शीघ्रता से बढ़ती हैं। यदि जल का रंग गहरा हरा/नीला हो जाये तो कुछ समय के लिये उर्वरकों का प्रयोग रोका जा सकता है।

अब पुराने तालाब में आगे बतायी गई विधि से मीन पालन कर मत्स्य पालक अच्छा लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

मत्स्य बीज (अंगुलिका) संचय

विभिन्न मीन प्रजातियों (नैन, रोहू, भॉकुर, सामान्य सिल्वर तथा ग्रांस शाफर) की अंगुलिकाओं (लगभग 8-10 से० मी० लंबी) को मिश्रित पालन हेतु पहले से तैयार किये गये तालाब में डालना चाहिए। (सारणी - 2)। अंगुलिकाएं मत्स्य विभाग या निजी हैचरियों से जुलाई-सितम्बर के मध्य खरीदी जा सकती हैं। सामान्य शफर की अंगुलिकाएं मार्च में ही मिलती हैं क्योंकि यह प्रजाति फरवरी में अंडे देती है। एक हेक्टेयर जल क्षेत्र में पांच हजार अंगुलिकाएं संचित करनी चाहिए।

कृत्रिम या पूरक आहार

खादीकरण के उपरांत जल में जो प्राकृतिक भोजन प्लवक के रूप में बनता है यह थोड़े दिनों के लिए तो पर्याप्त होता है। किंतु अंगुलिकाओं के शीघ्र बढ़ने के लिए कृत्रिम आहार देना आवश्यक होता है। इसके लिए चावल की कनी और सरसों या मूंगफली की खली 1:1 अनुपात में (भार से) सानकर मछलियों

सारणी 2
मिश्रित मत्स्य पालन में अंगुलिका संचय (5000/हैक्टेयर की दर से)

प्रजातियां	प्रजाति मिश्रण					
	3 प्रजातियां		4 प्रजातियां		6 प्रजातियां	
	अनुपात	संख्या	अनुपात	संख्या	अनुपात	संख्या
1. भांकुर	4	2000	3	1500	1.5	750
2. रोहू	3	1500	3	1500	2.8	1000
3. नैन	3	1500	2	1000	1.5	750
4. सामान्य शफर	—	—	2	1000	2.0	1000
5. ग्रास कार्य	—	—	—	—	1.5	750
6. सिल्वर कार्य	—	—	—	—	1.5	750

के कुल अनुमानित भार का 2-3 प्रतिशत प्रति दिन प्रातः काल किसी नियत स्थान पर टोकरी आदि में तालाब के अंदर रख देनी चाहिए। ग्रास सफर के लिए जलीय पादप, बरसीम, नैपियर घास, हरा चारा तालाब में डालना चाहिए, यह मछली अपने भार के बराबर मात्रा में भोजन करती है।

देखभाल एवं उत्पादन

माह में कम से कम एक बार जाल चलाकर मछलियों की बढ़ोत्तरी व स्वास्थ्य के बारे में जानकारी प्राप्त करते रहना चाहिए। यदि तालाब निवास स्थान से दूर है तो रखवाली की व्यवस्था करनी चाहिए। तालाब के किनारे-किनारे चारों और बांस की टहनी काट कर जल के अंदर डाल देनी चाहिए। इससे कोई व्यक्ति चोरी छुपे मछली नहीं मार सकता है। मेंढ़क, सांप, नेवला, बिलाव आदि से भी मछलियों की रक्षा करनी चाहिए। दस से बारह माह में मछलियां 750 ग्राम से एक किलोग्राम की हो जाती है और उन्हें बाजार में बेचा जा सकता है। यदि उपरोक्त विधि से तालाब में मीन पालन किया जाये तो सामान्यतः 4000 कि० ग्रा० मछली प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष प्राप्त की जा सकती है। जिससे लगभग हर वर्ष 30 हजार रुपये का लाभ प्रति हैक्टेयर अर्जित किया जा सकता है।

सह प्राध्यापक,
मत्स्य विज्ञान विभाग,
नरेंद्र देव कृषि एवं - प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय
कुमारगंज, फैजाबाद - 224229
(उत्तर प्रदेश)

लेखकों से अनुरोध

'कुरुक्षेत्र' के लिए मौलिक लेख, कहानी, कविता, संस्मरण, लघुकथा, हास्य-व्यंग्य चित्र आदि भेजिये। कृपया अपनी रचनाएं टाइप कराकर दो प्रतियों में भेजें। जिन रचनाओं के साथ मौलिकता का प्रमाण पत्र संलग्न नहीं होगा, वे स्वीकार नहीं की जा सकेंगी। विशेष अवसरों के लिए लेख कम से कम एक माह पहले प्राप्त हो जाने चाहिए। सभी रचनाएं संपादक, 'कुरुक्षेत्र', 467, कृषि भवन, नई दिल्ली - 110001 के पते पर भेजें।

हिमाचल में सामाजिक वानिकी – एक आर्थिक पहलू

✍ सेवा सिंह सागवाल

भारत का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 32.8 करोड़ हैक्टेयर है जिसमें 14.5 करोड़ हैक्टेयर कृषि के अंतर्गत आता है। वनों के अधीन 7.5 करोड़ हैक्टेयर भूमि पायी जाती है। एक अनुमान के अनुसार भारत में रक्षित वन केवल 12 प्रतिशत ही है। वन अब घटते ही जा रहे हैं जिनके कई कारण हैं जैसे (1) वनों तथा दूसरी भूमि का दोषपूर्ण उपयोग, (2) स्थानान्तरित खेती, (3) अत्यधिक चराई, (4) वनाग्नि, (5) अवैध कब्जे आदि। वनों का मनुष्य के साथ चोली दामन का साथ रहा है। वनों तथा वनों की लकड़ी का मनुष्य के लिए बहुत महत्व होता है। यदि वनों का ह्रास होता रहा तो उसके बहुत भयंकर परिणाम होंगे। इनमें से कुछ गंभीर परिणाम निम्न हो सकते हैं:

(1) बिना वृक्षों का कल,
(2) भूमि की ऊपरी उपजाऊ परत की हानि,
(3) अस्थिर पारिस्थितिकी,
(4) पर्यावरणीय प्रदूषण,

भारत में राष्ट्रीय वन नीति (1952) के अनुसार पहाड़ी क्षेत्रों में 60 प्रतिशत क्षेत्रफल में वन तथा मैदानी क्षेत्र में 20 प्रतिशत वन होना निश्चित किया गया था। लेकिन देश में वन क्षेत्रों की दशा बहुत ही शोचनीय है। लगातार बढ़ती हुई जनसंख्या भी उसे और अधिक गंभीर बना रही है, जिसके कारण लोगों की लकड़ी की मांग तथा पूर्ति में अंतर को पाटना मुश्किल ही नहीं अंसभव-सा प्रतीत होता है। उदाहरणार्थ, राष्ट्रीय कृषि आयोग के अनुमानानुसार भारतवर्ष की जनसंख्या सन् 2000 तक 100 करोड़ हो जायेगी तथा उस समय ईंधन की लकड़ी की आवश्यकता 22.5 करोड़ घन मीटर और कारखानों के लिए लकड़ी की मांग 6.44 करोड़ घन मीटर होगी।

हिमाचल प्रदेश में वन प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। इस राज्य में वनों के अंतर्गत लगभग 21,325 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र आंका गया है लेकिन वृक्षों की वांछित घनता 23 प्रतिशत से अधिक नहीं है। राज्य सरकार इस दिशा में काफी सचेत है तथा समय-समय पर कई प्रकार के कार्यक्रम चलाती है जिससे वन सम्पदा में लगातार वृद्धि हो। इस प्रदेश में दो मुख्य विकल्प पहचान लिये गये हैं जो निम्न हैं — (क) औद्योगिकी तथा (ख) वानिकी। स्वर्गीय डा. यशवंत सिंह परमार जो इस प्रदेश की जन्मदाता भी कहे जाते हैं, का इसमें बहुत बड़ा योगदान रहा है। उन्होंने सर्वप्रथम त्रिमुखी वानिकी को लोकप्रिय बनाया।

इस प्रदेश में वानिकी का अपना एक महत्वपूर्ण स्थान है। निम्नलिखित क्षेत्रों में इसका योगदान स्पष्ट है :

(क) राजस्व में भारी योगदान,
(ख) पारिस्थितिकी संतुलन कायम करना, तथा
(ग) चरागाहों की वनस्पति बढ़ाना।

इन योगदानों के अतिरिक्त वनों से अन्य निम्नांकित लाभ भी होते हैं:

1. सीधे आर्थिक लाभ

वनों में मनुष्य को कई प्रकार के आर्थिक लाभ मिलते हैं जैसे

(क) ऊर्जा के स्रोत,
(ख) रोजगार उत्पादन,
(ग) लघु व कुटीर उद्योगों का विकास,
(घ) लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति करना,
(ङ) कारखानों की आवश्यकताओं को पूरा करना,
(च) पर्यटन का विकास आदि।

2. अप्रत्यक्ष पारिस्थितिकी सुधार

वनों के कई ऐसे लाभ होते हैं जो मनुष्य को सामने नजर नहीं आते लेकिन उनका क्रम चलता ही रहता है। ऐसे लाभों में निम्नलिखित का उल्लेख किया जा सकता है;

(1) **जलवायु को स्वच्छ बनाना।**

(2) **नमी का संरक्षण** : वन वर्षा का वितरण सही करते हैं। इतना

ही नहीं, वे उसके उपयोग को भी सही बनाते हैं। ऐसा करने से पानी को नियंत्रित किया जा सकता है। इस प्रकार यह पानी भूमि में संचित रहता है।

(3) **भूमि संरक्षण** : डॉ. स्वामीनाथन के अनुसार भारत में प्रतिवर्ष लगभग 600 करोड़ टन ऊपरी परत से मिट्टी बह जाती है। इससे भूमि की उर्वरा शक्ति घटती है। वन अपनी वनस्पति की चादर के कारण इस भयंकर हानि को रोक सकते हैं तथा भूमि संरक्षण में भारी योगदान करते हैं।

(4) **बाढ़ की रोकथाम** : भारत में प्रति वर्ष 300 करोड़ रुपये का नुकसान केवल बाढ़ों द्वारा ही होता है। इन बाढ़ों से जानमाल की हानि तो होती ही है लेकिन साथ ही फसलों, पशुओं और नहरों को बहुत ही क्षति पहुंचती है। वन इन सबको संरक्षण प्रदान करते हैं तथा बाढ़ को रोकने में सहायक होते हैं।

(5) **वातावरण को सुंदर करना :** छोटे-छोटे वन वातावरण में चार चांद लगा देते हैं। यद्यपि धन दौलत किसी भी देश की खुशहाली का द्योतक होती है लेकिन उसका विकास तो सुंदर वातावरण पर निर्भर करता है। यह खूबी वनों में निहित है।

6. **कृषि पारिस्थितिकी में सुधार** : छोटे से छोटा वन का टुकड़ा भी भूमि की वनस्पति में विभिन्नताएं उत्पन्न करने में समर्थ होता है। लंबे-चौड़े कृषि के मैदानों के बीच में यदि कोई छोटा-सा वन का टुकड़ा भी हो तो वह कई प्रकार के जीव-जंतुओं को शरण प्रदान करके कृषि पारिस्थितिकी में सुधार लाने में बहुत सहायक होता है।

(ग) **प्रदूषण को रोकना :** आज जनसंख्या में तीव्रता से वृद्धि होती जा रही है जिससे लगातार प्रदूषण को बढ़ावा मिल रहा है। वन प्रदूषण के प्रकोप को कम करने में अच्छा योगदान देते हैं।

हिमाचल में वृक्षों की बहुत सी बहुमूल्य प्रजातियां पायी जाती हैं। ये कच्चे माल की आपूर्ति में बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। हिमाचल प्रदेश में इन प्रजातियों का क्षेत्रफल निम्नलिखित तालिका में दिया गया है:

तालिका 1 : प्रमुख प्रजातियों का क्षेत्रफल (हजार हेक्टेयर)

प्रजाति	हिमाचल प्रदेश	पश्चिमी हिमाचल	प्रतिशत
चीरपाईन	114.7	674.7	18.48
साल	26.1	310.1	8.42
देवदार	69.9	195.9	35.68
फर और स्प्रूस	147.9	528.9	27.96
कैल	86.4	283.4	30.49
अन्य	116.0	1395.0	8.32

हिमाचल सरकार वन सम्पदा की वृद्धि के प्रति बहुत सचेत है तथा राज्य में सन् 2000 तक कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का 50 प्रतिशत क्षेत्र वनों के अंतर्गत लाने का लक्ष्य रखा गया है। इस दिशा में भरसक प्रयत्न तो किये जा रहे हैं लेकिन शायद ही इस उद्देश्य की पूर्ति हो। वैसे चाहे यह पूरा हो न हो लेकिन वनों के क्षेत्र में वृद्धि अवश्य तथा निश्चित है। हर वर्ष वनीकरण पर बहुत धन राशि खर्च की जाती है।

आज बढ़ती जनसंख्या के कारण मनुष्य की इमारती व ईंधन लड़की की मांग भी लगातार बढ़ती ज़ा रही है। लेकिन वस्तुस्थिति यह है कि इस राज्य में इमारती तथा ईंधन की लकड़ी का उत्पादन बढ़ने के स्थान पर घट रहा है।

हिमाचल के वनों से न केवल ईंधन व इमारती लकड़ी प्राप्त होती है बल्कि ये अनेक प्रकार के उपयोगी पदार्थों के असीम भंडार हैं। बांस, बरोज़ा, गोंद, घास व चारा औषधि वाले पौधे प्रमुख हैं। इन पदार्थों को तुच्छ नहीं समझना चाहिए क्योंकि हर एक की अपनी पहचान तथा मनुष्य के जीवन में महत्व है। उदाहरणार्थ बरोजा अमूल्य पदार्थ होता है क्योंकि इसका प्रयोग बहुत-सी चीजों में होता है। यह मुख्यतया चीरपाईन से निकाला जाता है।

रोजगार

समस्त भारत में बेरोजगारी की समस्या बहुत गंभीर होती जा रही है जो किसी भी देश के लिए एक चिंता का विषय होती है। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि लगभग 70 प्रतिशत लोग जमीन से पैदावार पर निर्भर करते हैं। कृषि वानिकी तथा सामाजिक वानिकी उस समस्या का हल ढूंढ़ने में काफी सहायक सिद्ध हो सकती है। राजस्व प्राप्त करने के अतिरिक्त वन रोजगार के अवसर जुटाते हैं। ये अवसर वनों तथ वनों पर आधारित कारखानों के माध्यम से उपलब्ध होते हैं। कुछ इस प्रकार है जैसे काठ कबाड़ इकट्ठा करना, लागिंग, वृक्षारोपण, मुख्य व गौण पदार्थों को इकट्ठा करना या निकालना। वनों के प्रबंध में कुशल और अकुशल दोनों प्रकार के कामगारों को लगाया जा सकता है।

कृत्रिम पुनरुत्पादन में भी कई प्रकार के लोगों को काम मिलता है। उदाहरणार्थ, वृक्षारोपण करना, पौधों को स्थानान्तरित करना, बाद की देख भाल करना आदि ऐसे कार्य हैं जो प्रवीण व अर्द्धप्रवीण श्रमिकों द्वारा किये जाते हैं।

इतना ही नहीं लोगों को सरकारी वनों तथा रोपवनों में भी काफी काम मिल सकता है। आज भी राज्य में कई लोग वनों में दैनिक मजदूरी के कार्य में लगे हुए हैं।

अन्य आर्थिक स्रोत : राज्य का वन विभाग प्रदेश की आर्थिक उन्नति में काफी योगदान देता है। इसी बात को मद्देनजर रखकर छठी पंचवर्षीय योजना में सामाजिक वानिकी पर बहुत जोर दिया गया क्योंकि वनों का दिन प्रतिदिन ह्रास होने के कारण इनकी संख्या कम होती जा रही है ओर परंपरागत वन आज मानव की आवश्यकताओं को पूरा करने में असमर्थ हैं।

सातवीं पंचवर्षीय योजना के आधार पर एकत्रित आंकड़ें निम्न प्रकार हैं :

तालिका 2 : रोपण के अंतर्गत क्षेत्रफल

	स्कीम/प्रोग्राम	क्षेत्रफल (हेक्टेयर)
1.	सामाजिक वानिकी	1,77,851
2.	फार्म वानिकी (प्राइवेट)	37,000
3.	तेज बढ़ोतरी वाली प्रजातियां	13,131
4.	आर्थिक रोपवन	14,385
5.	समुदाय रोपवन	4,000

आर्थिक पहलू के साथ-साथ आज वृक्षों को न केवल उगाना ही जरूरी हो गया है बल्कि जो कुछ भी वनों की धरोहर हमारे पास विद्यमान है उसको संभाल कर रखना अति आवश्यक है। इसी से हम अपने पर्यावरण को संतुलित कर सकते हैं। अतः सामाजिक वानिकी को बड़े पैमाने पर अपनाना अति आवश्यक है। इससे आम जनता की कई प्रकार की मांगों को पूरा किया जा सकता है।

सामाजिक वानिकी को कई प्रकार से लागू किया जा सकता है जैसे कि

1. गांव की शामलात तथा परती भूमि पर वृक्षारोपण,
2. सड़क के किनारों पर भारी मात्रा में वृक्षवल्लियां उगाकर,
3. गैर सरकारी भूमियों में वृक्ष लगाकर,
4. नदी, नालों, नहरों आदि के किनारों का वृक्षारोपण करना,
5. सिंचाई वाले क्षेत्रों तथा दलदली जमीनों में वृक्षारोपण,
6. नकोर वनों का पुनः वृक्षारोपण करना।

मुख्य तरीके :

सामाजिक वानिकी का मुख्य उद्देश्य यह है कि मनुष्य की उन्नति तथा खुशहाली चंहुमुखी हो। किसानों को इमारती लकड़ी, छोटी मोटी लकड़ी, ईंधन की लकड़ी, चारादि में स्थायी रूप से आत्मनिर्भर बनाना। इस वानिकी के कई प्रकार हैं जैसे :

1. कृषि वानिकी,
2. विस्तार वानिकी,
3. शहरी वानिकी तथा
4. समुदाय वानिकी।

सामाजिक वानिकी को बढ़ावा देना आज की सबसे बड़ी जरूरत मानी जाती है। इस विषय में राज्य का वन विभाग बड़ा योगदान कर सकता है। इसलिए वन विभाग को पहल करनी चाहिए। एक कहावत है कि मनुष्य करके सीखता है तथा देखकर विश्वास करता है। जब कोई ऐसे कार्यक्रमों को शुरू करता है तो लोगों का योगदान लेना अति आवश्यक हो जाता है। आज की आवश्यकता यह है कि अधिक से अधिक विभिन्न प्रकार की लकड़ी पैदा की जाये तथा वह भी शीघ्र। यह तभी संभव हो सकता है जब सामाजिक वानिकी को बड़े पैमाने पर अपनाया जाये तथा जो भी हमारे पास वन सम्पदा है, उसे भी नष्ट होने से बचाया जाये।

द्वारा पी० सी० गुप्ता,
हॉस्पिटल रोड,
सोलन - 173212
हिमाचल प्रदेश

निरक्षर आदिवासियों में पढ़ने की ललक। रात्रि में चलायी जा रही डूंगरपुर जिले में एक कक्षा।

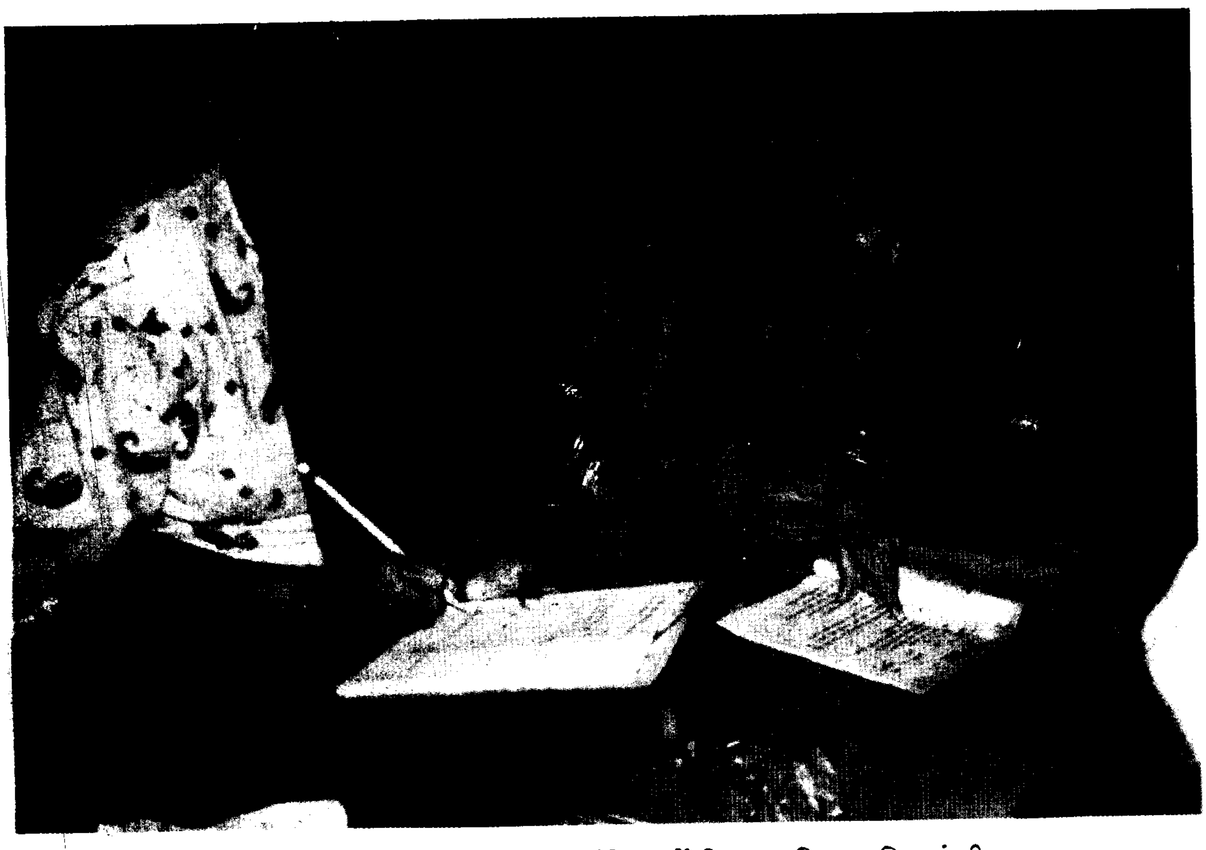

डूंगरपुर जिले में संपूर्ण साक्षरता आंदोलन में निरक्षर मुस्लिम महिलाएं भी पीछे नहीं रहीं।

आर. एन./708/57
डाक-तार पंजीकरण संख्या : (डी (डी एल) 12057/94
पूर्व भुगतान के बिना डी. पी. एस. ओ. दिल्ली में डाक में डालने
की अनुमति (लाइसेंस) : यू (डी एन)-55

RN/708/57
P & T Regd. No. D •(DL) 12057/
Licenced under U (DN)-55
to post without pre-payment at DPSO, Delhi-54